
Registration No. V-36244/2008-09

ISSN :- 2395-0390

The journal has been listed in 'UGC Approved List of Journals' with Journal No. – 48402 in previous list of UGC

JIFE Impact Factor – 5.21

Varanasi Management Review

A Multidisciplinary Quarterly International Peer Reviewed Referred Research Journal

Editor in Chief

Dr. Alok Kumar

Associate Professor & Dean (R&D)
School of Management Sciences
Varanasi

Volume - XI

No. - 3

(July – Sept.) 2025

(Part – II)

Published by
Future Fact Society
Varanasi (U.P.) India

*Varanasi Management Review - A Multidisciplinary Quarterly International
Refereed Research Journal, Published by : Quarterly*

Correspondence Address :
C 4/270, Chetganj
Varanasi, (U.P.)
Pin. - 221 010
Mobile No. :- 09336924396
Email- vnsmgrev@gmail.com

Note :-

The views expressed in the journal "Varanasi Management Review" are not necessarily the views of editorial board or publisher. Neither any member of the editorial board nor publisher can in anyway be held responsible for the views and authenticity of the articles, reports or research findings. All disputes are subject to Varanasi (Uttar Pradesh) Jurisdiction only.

Managing Editor
Avinash Kumar Gupta

©Publisher

ISSN : 2395-0390

Printed by

Interface Computer, B 31/13-6, Malviya Kunj, Lanka, Varanasi-221005 (U.P.)

ADVISORY BOARD

- **Prof. T. N. Singh**, School of Plant Sciences, Haramaya University, Ethiopia (Africa)
- **Prof. S.K. Bhatnagar**, School for Legal Studies, BBAU, Lucknow
- **Prof. (Dr.) Munna Singh**, Head of Department, Physical Education and Sports Sciences Department, Handia P.G. College, Handia, Prayagraj, U.P.
- **Dr. Saumya Singh**, Associate Professor, Department of Management Studies, Indian School of Mines, Dhanbad
- **Dr. Mrinalini Pandey**, Associate Professor, Department of Management Studies, Indian School of Mines, Dhanbad
- **Dr. Achche Lal Yadav**, Assistant Professor, Physical Education, Pt. D. D. U. Government Degree College, Saidpur, Ghazipur
- **Dr. Aditya Kumar Gupta**, Assistant Professor, School of Management Sciences, Varanasi
- **Dr. Abhishek Sharma**, Assistant Professor, Department of Hindi, Ravenshaw University, Cuttack
- **Dr. A. Shanker Prakash**, Assistant Professor, School of Management Sciences, Varanasi
- **Dr. Anil Pratap Giri**, Assistant Professor, Department of Sanskrit, Pondicherry Central University, Pondicherry.

EDITORIAL BOARD

- **Dr. Sanjay Singh**, Department of Plant Science, University of Gondar, Ethiopia (Africa)
- **Dr. Diwakar Pradhan**, Professor in Nepali, Head, Deptt. of Indian Languages Faculty of Arts, Banaras Hindu University, Varanasi
- **Dr. Nagendra Kumar Singh**, Professor, Department of Journalism & Mass Communication, Mahatma Gandhi Kashi Vidyapith, Varanasi.
- **Dr. Manish Arora**, Associate Professor, Faculty of Visual Arts, Banaras Hindu University, Varanasi
- **Dr. Surjoday Bhattacharya**, Assistant Professor, Government Degree College, Pratapgarh U P
- **Dr. Upasana Ray**, Associate Professor, National Council of Educational Research and Training, New Delhi
- **Dr. Krishna Kant Tripathi**, Assistant Professor, Deptt. of Education, Central University of Mijoram, Mijoram
- **Dr. Urjaswita Singh**, Assistant Professor, Department of Economics, M.G. Kashi Vidyapith, Varanasi.
- **Dr. Santosh Kumar Singh**, Assistant Professor, P.G. Department of Psychology, J.P. University. Chapra
- **Dr. Ramkirti Singh**, Assistant Professor, Department of Psychology, Gorakhpur University, Gorakhpur
- **Dr. Girish Kumar Tiwari**, Assistant Professor, National Council of Educational Research and Training, New Delhi

- **Dr. Ranjeet Kumar Ranjan**, Assistant Professor, Department of Psychology, J.P. College, Narayanpur, Bihar
- **Dr. Paromita Chaubey**, Faculty of Education, Banaras Hindu University, Varanasi

ॐ



EDITOR'S NOTE

It is a great honour to me to extend my warm greetings and welcome you all to the journal, **Varanasi Management Review**, a refereed journal of multi disciplinary research. The journal, which is a peer-reviewed, will devote to the promotion of multi-disciplinary research and explorations to the South Asian and global community. It is our objective to provide a platform for the publication of new scholarly articles in the rapidly growing field of various disciplines. We are trying to encourage new research scholars and post graduate students by publishing their papers so that they may learn and participate in literary publishing through a professional internship. Scholarly and unpublished research articles, essays and interviews are invited from scholars, faculty researchers, writers, professors from all over the world.

Note: All outlook and perspectives articulated and revealed in our peer refereed journal are individual responsibility of the author concerned. Neither the editors nor publisher can be held responsible for them anyhow. Plagiarism will not be allowed at any level. All disputes are subject to Varanasi (Uttar Pradesh) Jurisdiction only.

Hoping all of you shall enjoy our endeavors and those of our contributors.

Editor



CONTENTS

"Varanasi Management Review"

➤	संगीत जगत पर कोरोना काल का प्रभाव एवं संगीत चिकित्सा <i>किशन दास महंत</i>	01-04
➤	कॉलेज के छात्रों में मानसिक स्वास्थ्य एवं तनाव स्तर का मूल्यांकन : कारण, प्रभाव और निवारण रणनीतियाँ <i>ज्योति कुमारी</i> <i>डॉ. लाल बाबू सिंह</i>	05-09
➤	मलिन बस्तियों में रहने वाले युवाओं के मानसिक स्वास्थ्य पर सामाजिक व आर्थिक वंचना का प्रभाव: चिंता, अवसाद एवं आत्म-संकल्पना का तुलनात्मक अध्ययन <i>रागिनी कुमारी</i> <i>डॉ. गिरिजा उरॉव</i>	10-14
➤	दृष्टिबाधित एवं सामान्य किशोरों की आत्म-धारणा, सामाजिक कौशल, प्रतिबल तथा शैक्षणिक अनुकूलन का तुलनात्मक अध्ययन <i>विनीता कुमारी</i> <i>डॉ. गिरिजा उरॉव</i>	15-18
➤	योग आधारित शारीरिक एवं मानसिक प्रशिक्षण का लड़कों और लड़कियों की शैक्षणिक उपलब्धि पर प्रभाव: सर्वेक्षण विधि पर आधारित विश्लेषण <i>सूर्यमणि यादव</i> <i>कैप्टन प्रो. (डॉ.) चन्द्र भान सिंह</i>	19-22
➤	अगिआंव प्रखंड जिला भोजपुर में विधवाओं की सामाजिक आर्थिक दशा का भौगोलिक अध्ययन <i>निरंजन कुमार भारती</i>	23-25
➤	काशी की वैदिक पाण्डित्य परंपरा और यूरोप का दार्शनिक विमर्श <i>शिखर श्रीवास्तव</i> <i>प्रो. प्रवेश भारद्वाज</i>	26-32
➤	लौटे हुए मुसाफिर और नफरत की राजनीति <i>डॉ. राम आशीष</i>	33-35
➤	नवादा जिला में मानवीय संसाधन एवं पर्यावरणीय अवनयन – एक भौगोलिक अध्ययन <i>दुर्गा शंकर कुमार</i>	36-41
➤	मैथिली साहित्य में आधुनिकताक अवधारणा <i>रीमा कुमारी</i>	42-48
➤	निराला कृत राम की शक्तिपूजा का अंतरानुशासनात्मक अध्ययन <i>चंद्रप्रकाश गोस्वामी</i>	49-54
➤	भारत में दलित इतिहास अतीत से वर्तमान <i>अजय कुमार</i> <i>संजय श्रीवास्तव</i>	55-57

➤	स्वयं सहायता समूहों का नालंदा जिले की ग्रामीण महिलाओं के सामाजिक-आर्थिक बदलाव में योगदान डॉ. राखी कुमारी	58-63
➤	गुप्तकालीन व्यापार, कृषि एवं उद्योग मोहम्मद बेलाब	64-67
➤	शिक्षा और भावनात्मक बुद्धिमत्ता डॉ. मनोज कुमार सिंह	68-77
➤	प्रवासी साहित्य में राष्ट्रीय चेतना शिवेंद्र सिंह	78-80

संगीत जगत पर कोरोना काल का प्रभाव एवं संगीत चिकित्सा

किशन दास महंत*

सारांश

मार्च 2020 में पूरे विश्व पर एक अनजाने वायरस कोविड-19 का हमला हुआ, जिससे जीवन अस्त-व्यस्त हो गया, जिसका संकट आज भी बना हुआ है। पूरे विश्व में तीन करोड़ से अधिक लोगों को रोजगार देने वाले सांस्कृतिक क्षेत्र पर इस महामारी के कारण अपेक्षा से अधिक मार पड़ी है, यूनेस्को के एक रिसर्च अध्ययन से यह भी पता चलता है कि संगीत और संगीत कार्यक्रम बंद होने के कारण संगीत उद्योग को प्रायोजकों से मिलने वाली 10 अरब से अधिक धनराशि का नुकसान उठाना पड़ सकता है। इससे यह ज्ञात होता है कि कलाकारों और सांस्कृतिक अधिकारियों को प्रत्यक्ष समर्थन किया जाना चाहिए, ताकि इस कोरोना काल से होने वाली बड़ी हानि से बचा जा सके और इस स्थिति का अच्छे ढंग से सुधार किया जा सके। इस वायरस को दूर करने के लिए संगीत चिकित्सा भी अत्यधिक उपयोगी हो सकता है बस जरूरत है तो इसके उपयोग हेतु ध्यान देने की, जिससे स्वर-लय-ताल के संबंध से इस कोरोना वायरस रूपी विकार को दूर किया जा सके।

महत्वपूर्ण शब्द – कोरोना, कोविड-19, संगीत चिकित्सा, संगीत जगत, संगीतज्ञ, भारतीय शास्त्रीय संगीत, गुरु – शिष्य, संस्कृति |

परिचय

मार्च 2020 में पूरे विश्व पर एक अनजाने वायरस कोविड-19 का घातक हमला हुआ, जो फरवरी 2021 के मध्य तक लगभग समाप्ति के कगार पर था, लेकिन अचानक कोरोना की दूसरी लहर ने दस्तक दी, जिनका प्रभाव अभी तक दिखाई दे रहा है। इस वायरस ने मानव जीवन को गहरा प्रभावित किया है। थोड़े समय के लिए यह लगा कि भारत इस महामारी के चपेट में आने से बच गया परन्तु ऐसा नहीं हुआ। धीरे-धीरे यह महामारी भारतीय जीवन को भी अस्त-व्यस्त करना शुरू कर दिया, जिससे सभी त्योहारों, संगीत कार्यक्रमों का आयोजन कुछ थम सा गया तथा संगीत विद्यालय भी बंद होने लगे और संगीत की शिक्षा ऑन लाईन माध्यम से शुरू हो गई। इसी तरह से यह कोरोना वायरस का संगीत जगत पर धीरे-धीरे प्रभाव पड़ना शुरू हो गया और अभी तक यह संगीत जगत पर अपना प्रभाव दिखा रहा है। इसके कारण संगीत जगत में कई बड़े-बड़े नुकसान हुए हैं, जिसका आगे विस्तृत रूप से वर्णन किया गया है।

कला जगत और कोरोना काल

कोरोना संक्रमण ने संगीत की दुनिया के सारे सूर थाम लिए हैं, न साज है, न आवाज है और न ही मंच पर होने वाली रौनक नजर आती है। पिछले साल से चली आ रही संगीत जगत और कलाकारों की बदहाली जारी है। शास्त्रीय संगीत हो या लोक संगीत सभी जगह कलाकारों की एक जैसी कहानी है।²

कोरोना संक्रमण के कारण कलाकारों की रोजी-रोटी चलना मुश्किल हो गया। कोरोना की प्रथम लहर में पिछला साल तो जैसे-तैसे कट गया था परन्तु दूसरी लहर से कलाकारों का जीवन और संगीत जगत पर बहुत बुरा प्रभाव पड़ा है। इस संक्रमण के कारण न तो कहीं कार्यक्रम का आयोजन और न ही संगीत के विद्यालय खुले। चारों ओर से संगीतज्ञों पर आर्थिक स्थिति का बहुत बुरा प्रभाव पड़ा, जिससे संगीतज्ञ एवं कलाकार मानसिक स्थिति से भी तनावग्रस्त होते जा रहे हैं।

संगीत ने जो रुतबा, सम्मान और शोहरत दी है उसको देखते हुए यह कलाकार किसी से मदद मांगने में भी अपने आप को असमर्थ पा रहे हैं। इस कोरोना काल के समय में इन कलाकारों एवं संगीतज्ञों तक न तो कोई सरकारी मदद हुई और न ही कोई सरकारी योजना पहुँची, क्योंकि यह किसी सरकारी योजना के दायरे में आते ही नहीं और इन कलाकारों के लिए कोई सरकारी योजना बनाई ही नहीं गई है, जिसका इनको लाभ मिल सके।

जरूर यह कहा जा सकता है, कि जो कलाकार सरकारी कार्य व्यवस्था से जुड़े हैं उनके लिए मुश्किलें तो कम हैं लेकिन जो सिर्फ सांस्कृतिक कार्यक्रमों पर निर्भर या आश्रित होते हैं उनके ऊपर तो भुखमरी जैसी हालत आन पड़ी। कोरोना काल में कलाकारों के ऊपर आर्थिक संकट आन पड़ा है तथा कलाकारों की आजीविका या जीवनयापन करने का दूसरा साधन भी नहीं है सिवाय संगीत के।

जब कलाकारों ने शासन से मदद की गुहार लगाई, तो शासन-प्रशासन ने भी कोई खास मदद कलाकारों के लिए नहीं की। कलाकारों के सामने यह बात आ गई कि घर पर बैठे-बैठे परिवार का पालन कैसे करें, कहाँ से अपनी दैनिक आवश्यकताओं की पूर्ति करें।

* शोधार्थी, अवनद्ध वाद्य विभाग, इं.क.सं. विश्वविद्यालय, खैरागढ़ (छ.ग.)

एक संगीतज्ञ जो छोटा सा संगीत विद्यालय चला कर अपना गुजर-बसर करता है वह भी इस कोरोना संक्रमण के कारण बंद हो गया। ऐसी परिस्थिति में इनके सामने यह प्रश्न आ गया कि- करें तो क्या करें, जिससे अपने और अपने परिवार का गुजर-बसर हो सके।

संयुक्त राष्ट्र शैक्षिक, वैज्ञानिक और सांस्कृतिक संगठन (यूनेस्को) ने कहा है कि पूरे विश्व में तीन करोड़ से अधिक लोगों को रोजगार देने वाले सांस्कृतिक क्षेत्र पर कोरोना वायरस महामारी के कारण अपेक्षा से अधिक मार पड़ी है।

संयुक्त राष्ट्र शैक्षिक वैज्ञानिक और सांस्कृतिक संगठन ने कलाकारों एवं संगीतज्ञों को इस स्थिति से निकालने के लिए कुछ नियम भी बनाए हैं जिससे उनकी मदद की जा सकेगी। यूनेस्को के महानिदेशक ऑड्रे अंजुले का कहना है- तीन करोड़ रोजगार के लिए जिम्मेदार यह क्षेत्र खुद को बचाने के लिए संघर्ष कर रहा है और उसे हमारी मदद की ज़रूरत है। उन्होंने कहा- 'संस्कृति ने हमें संकट से बाहर निकालने में मदद की है अब हमें संस्कृति की मदद करनी है और विविधता का समर्थन करना है, जिस पर संस्कृति की ताकत टिकी है।

इसका सामना केवल यह सेक्टर ही नहीं कर रहा है, लोगों के लिए भी एक बड़ा नुकसान है क्योंकि उन्हें भी सांस्कृतिक कार्यक्रमों से वंचित होना पड़ा है।³

संगीत स्कॉलर चित्राशंकर कहती हैं कि- 'कोरोना के प्रभाव से उत्पन्न 'डिजिटल वायरस' कहीं धीरे-धीरे भारतीय शास्त्रीय संगीत जैसे कला की तबीयत को बिगाड़ने का काम तो नहीं कर रहा है।'

इस कोरोना काल के कारण आज शास्त्रीय संगीत विधा जो गुरु-शिष्य परंपरा के माध्यम से आमने-सामने उपस्थित होकर शिक्षा ग्रहण की जाती है वही आज ऑनलाइन के माध्यम से इस विधा की शिक्षा दी जा रही है, जिसके कारण इसका महत्व कहीं-न-कहीं घटा है। ऐसा इसलिए, क्योंकि शास्त्रीय संगीत विधा ऑनलाइन के माध्यम से नहीं सिखाई जा सकती या नहीं सीखी जा सकती। संगीत साधना का विषय है, जिसमें आत्मीय भाव होता है और उसे प्राप्त करने के लिए यह ऑनलाइन माध्यम अनुपयुक्त है क्योंकि तकनीक उस आत्मीय सान्निध्य को पूरा करने में सक्षम नहीं है।

संस्थागत शिक्षा प्रणाली पर कोरोना का प्रभाव

संस्थागत शिक्षा प्रणाली के अंतर्गत संगीत विषय की परीक्षा ऑनलाइन माध्यम से ली जा रही है, जिससे मंच प्रदर्शन, वाइवा आदि के ऑडियो रिकॉर्डिंग आदि ईमेल के माध्यम से मंगाये जा रहे हैं, जिससे भी विद्यार्थी को मंच की प्राप्ति न होने के कारण हानि हुई है तथा इन्हीं वीडियो के आधार पर परिणाम घोषित कर दिया जाता है। इस प्रकार की परीक्षाएँ जो ऑनलाइन की माध्यम से हो रही है, जिससे सुविधा तो बहुत है पर सार्थकता लेश मात्र भी नहीं है। शास्त्रीय संगीत एक प्रदर्शन कला है, जो कि ऑनलाइन माध्यम से संभव नहीं हो सकती। अभी यह भी नहीं कहा जा सकता कि इसका प्रदर्शन कब तक प्रत्यक्ष रूप से हो पाएगा। और जब तक यह निश्चित नहीं होता तब तक यह डिजिटल प्लेटफॉर्म के माध्यम से चलता रहेगा।

इस संक्रमण के कारण बहुत से कक्षाएं आगे की कक्षाओं में प्रमोट कर दी गई हैं बिना किसी परीक्षा के। इससे भी संगीत के विद्यार्थियों को भारी नुकसान हुआ इस संक्रमण के कारण विद्यार्थियों के संगीत अभ्यास में भी बहुत कमी आयी। इन विषम परिस्थितियों की ओर ध्यान केंद्रित करने के कारण अभ्यास पर भी बुरा असर पड़ा है। इससे भी संगीत के विद्यार्थियों को गुजरना पड़ा। गुरु कहाँ तो शिष्य कहाँ, सभी अपने-अपने शहर अपने-अपने घरों में बंद हो गए, जिससे गुरुओं और शिष्यों के बीच का संपर्क टूट सा गया, जिसके कारण गुरु और शिष्य सभी का मन बहुत हतोत्साहित हुआ है। क्योंकि गुरु के सान्निध्य में रहकर रियाज करने से एक विशेष आत्मानुभूति की प्राप्ति होती है। जो शिष्य या विद्यार्थी को प्रबल और संगीत विधा में सुदृढ़ बनाती हैं। संगीत के विद्यार्थियों को इस कोरोना काल में इस से भी वंचित होना पड़ रहा है जो एक विद्यार्थी के लिए बहुत ही हानि दायक है।

देखा जाए तो कोरोना काल का संगीत जगत पर बहुत बुरा प्रभाव पड़ा है और यह ज्ञात नहीं किया जा सकता है कि आने वाले समय में और कब तक इसका प्रभाव संगीत जगत पर पड़ता रहेगा, जिसका नुकसान कलाकारों, संगीत के विद्यार्थियों, श्रोताओं और गुरु तथा शिष्यों को उठाना पड़ेगा। आखिर कब तक एक कलाकार अपनी मानसिक और आर्थिक संकट से गुजरता रहेगा और कब तक एक शिष्य अपने गुरु से दूर रहकर संगीत की साधना कर पाएगा। यह तभी संभव है जब यह कोरोना काल या कोरोना संक्रमण पूरी तरह से इस दुनिया से समाप्त हो जाए।

कोरोना वायरस से मुक्ति हेतु संगीत चिकित्सा

संगीत चिकित्सा पद्धति बिना किसी दुष्परिणाम के समस्त जीव-जंतुओं, पेड़-पौधों पर अपना स्वास्थ्यवर्धक प्रभाव उत्पन्न कर स्वास्थ्य लाभ प्रदान करती है। संगीत मनुष्य के संपूर्ण शरीर पर चिकित्सकीय प्रभाव डालता है या यह कहे कि संगीत मनुष्य के संपूर्ण रूप से चिकित्सा कर सकने में भी सक्षम है, जो कि अन्य किसी चिकित्सा पद्धति के द्वारा संभव नहीं है। संगीत चिकित्सा रोगी के शारीरिक एवं मानसिक स्तर पर एक साथ प्रभाव डालता है, जिसके फलस्वरूप परिणाम भी जल्द ही प्राप्त होने लगते हैं।

अमेरिकी संगीत चिकित्सक डॉ. हालर्स एस्टले ने अपनी उस प्रक्रिया को अधिक व्यवस्थित करने का प्रयास किया है। उसने लगातार 20 वर्ष इसी पद्धति से चिकित्सा की है और बताया है कि एलोपैथी द्वारा रोग मुक्त होने वालों की अपेक्षा संगीत उपचार से अच्छे होने वालों का अनुपात कहीं अधिक है।

संगीत चिकित्सा से हमें कोरोना वायरस से लड़ने में मदद मिलेगी संगीत चिकित्सा करने से पूर्व सर्वप्रथम हमें रोगी की प्रकृति वात, पित्त, कफ तीनों त्रिदोषों में से किससे विकार उत्पन्न हुआ है या किस का अनुपात शरीर में बढ़ गया है यह जान लेना चाहिए। सांगीतिक चिकित्सा एवं संगीत निहित राग आदि के मानव जीवन पर होने वाले प्रभावों का वर्णन हमारे प्राचीन ग्रंथों आदि में मिलता है। संगीत के अंतर्गत रागों से उत्पन्न रसों का प्रभाव रोगों पर पड़ता है जिससे रोगी रोग मुक्त हो जाता है। इसी चिकित्सा के माध्यम से कोरोना वायरस के प्रभाव को कम किया जा सकता है। जिस प्रकार प्राचीन विद्वानों ने प्रत्येक स्वर एवं ताल के मेल से वात, पित्त, कफ आदि से आई विकृति को दूर किया है, उसी प्रकार इन रागों के स्वर एवं तालों के संबंध से प्राप्त रस अनुभूति के माध्यम से इस वायरस से लड़ा जा सकता है। इस महामारी का संगीत चिकित्सा करने से पहले ध्यान देने योग्य बातें यह हैं कि संगीत शांत या गंभीर प्रकृति का ही हो, क्योंकि अन्य प्रकृति की संगीत से रोगी शांत होने के बजाय उत्तेजित भी हो सकता है।

जैसा हमें ज्ञात है कि कोरोना वायरस उन मनुष्यों को ज्यादा प्रभावित कर रहा है जिनका इम्यूनैटी पावर कम है। हमने पहले भी कहा है कि संगीत वात, पित्त, कफ तीनों दोषों से उत्पन्न हुई विकृति को दूर करने में सक्षम है। अतः संगीत चिकित्सा के माध्यम से मनुष्यों में इम्यूनैटी पावर को बढ़ाया जा सकता है, जिससे वायरस का प्रभाव कम हो सकता है। कोरोना वायरस को दूर करने के लिए इम्यूनैटी का मजबूत होना बहुत ही जरूरी है। सप्त-स्वरों में से षड्ज, ऋषभ, गंधार ये तीनों स्वरों के वादीत्व वाले राग पित्त के कारण हुए विकारों को दूर करते हैं। इनमें से ऋषभ स्वर पित्त के साथ-साथ कई विकारों हेतु चिकित्सा में उपयोगी है पूर्व सांगीतिक ग्रंथों की अध्ययन से यह पता चलता है कि राग खमाज, राग दरबारी कानड़ा, राग बिहाग, राग धानी, पूर्वी थाट से उत्पन्न गंधार वादी वाले राग जैसे पूर्वी, राग पूरिया, राग पूरिया कल्याण, इसके अतिरिक्त यमन थाट से उत्पन्न गंधार वादीत्व वाले राग जैसे राग यमन, राग भूपाली राग आदि इस कोरोना वायरस से लड़ने के लिए मनुष्यों के इम्यूनैटी सिस्टम को मजबूती प्रदान कर सकते हैं।

पित्तज रोगों की चिकित्सा हेतु गतों, बंदिशों का शृंगार रस प्रधान वाले तालों जैसे तीनताल, धुमाली, कहरवा, दादरा आदि में निबद्ध होना आवश्यक है, जिससे रागों एवं तालों के संबंध से जो रस अनुभूति होती है, उससे रोगों से मुक्ति पा सकें। कोरोना वायरस के कारण मनुष्यों के इम्यूनैटी के साथ-साथ इस रोग के रोगी को सांस लेने में भी बहुत ज्यादा परेशानी होती है जिससे रोगी को ऑक्सीजन सिलेंडर की सहायता से ऑक्सीजन प्रदान किया जाता है, जिसका प्रभाव ऑक्सीजन के समाप्त होने तक होता है तथा ऑक्सीजन की कमी के कारण वह रोगी अपना दम तोड़ देता है चूंकि श्वास प्रवाह मुख एवं नाक से अच्छे से न हो पाने के कारण कफ होता है, जो श्वास ग्रहण करने या छोड़ने के मार्ग में व्याप्त रहते हैं। इस कफ विकार की चिकित्सा हेतु संगीत के वीर रस प्रधान वाले स्वरों पंचम, ऋषभ, मध्यम, धैवत के वादीत्व वाले राग उपयोगी पाए गए हैं।

जैसे इस विकार से मुक्ति हेतु राग मालकौंस, राग काफी, राग केदार, राग तिलक कामोद, भैरव थाट निहित धैवत वादी ऋषभ संवादी वाले राग जैसे- राग भैरव, राग विभास, राग ललित आदि का प्रयोग किया जाता है। कपज् रोगों की चिकित्सा हेतु गतों एवं राग धुनों में रौद्र अथवा वीर रस प्रधान तालों का प्रयोग किया जाना चाहिए जैसे- चौताल, एकताल, रूद्रताल, मत्ताल आदि। इन दोनों विकारों (1) इम्यूनैटी की कमी और (2) श्वास लेने की परेशानी को दूर करने के लिए इस संगीत की चिकित्सा का उपयोग किया जा सकता है, जिससे इस महामारी रूपी कोरोना वायरस कोविड-19 को दूर किया जा सकता है। इसलिए पूरे विश्व को इस संगीत चिकित्सा की ओर ध्यान देने की विशेष आवश्यकता है।

निष्कर्ष

कोरोना महामारी के कारण संगीत जगत पर बहुत बुरा प्रभाव पड़ा। इससे कलाकारों एवं संगीतज्ञों की आर्थिक स्थिति तहस-नहस हो गई एवं इसने संगीत जगत के कई कलाकारों एवं उस्तादों को भी अपनी चपेट में ले लिया, जिससे भी संगीत जगत का बहुत हानि हुआ। यह कहा जाए कि- “यह कोरोना काल संगीत जगत के लिए अभिशाप है” तो यह बात संगीत जगत में ऐसी स्थिति उत्पन्न करने के कारण खरी उतरती है।

इससे यह भी ज्ञात होता है कि कैसे कलाकारों, संगीतज्ञों एवं गुरुओं और शिष्यों की संगीत से दूरी बनी। इन परिस्थितियों के कारण इन्हें मानसिक, आर्थिक सभी स्थितियों का सामना करना पड़ रहा है। इससे यह भी निष्कर्ष निकलता है कि सरकार इनके लिए सामने आए और जरूरी मदद प्रदान करें, जिससे इनकी समस्या का समाधान एवं इस कोरोना काल के कारण जीवनयापन करने की कठिनाइयां एवं परेशानियां मिट सके।

कोरोना महामारी को दूर करने में संगीत चिकित्सा का भी योगदान लिया जा सकता है। संगीत चिकित्सा का प्रयोग कर इस वायरस से लड़ने में मदद ली जा सकती है तथा इसके प्रभाव को कम किया जा सकता है तथा आने वाले समय में इस तरह के विषम परिस्थिति का निवारण किया जा सकता है।

संदर्भ ग्रंथ

1. विरासत भारतीय सांस्कृतिक निधि की समाचार पत्रिका, विपत्ति से मुक्ति, इनटेक, पेज 3, वसंत ग्रीष्म ऋतु, 2020-21
2. <https://www.amarujala.com/varanasi,2021>
3. अजूले, ऑड्रे, संयुक्त राष्ट्र समाचार, संयुक्त राष्ट्र शैक्षिक, वैज्ञानिक और सांस्कृतिक संगठन (यूनेस्को), 2021
4. शंकर, चित्रा, hindi.theprint.in, 2021
5. वर्मा, डॉ. सतीश, संगीत चिकित्सा, 2004, पृ. 442



कॉलेज के छात्रों में मानसिक स्वास्थ्य एवं तनाव स्तर का मूल्यांकन : कारण, प्रभाव और निवारण रणनीतियाँ

ज्योति कुमारी*
डॉ. लाल बाबू सिंह**

सारांश

उच्च शिक्षा प्राप्त कर रहे कॉलेज छात्र जीवन के ऐसे चरण से गुजरते हैं जहाँ उन्हें शैक्षणिक दबाव, करियर की अनिश्चितता, सामाजिक अपेक्षाएँ, आर्थिक चुनौतियाँ और व्यक्तिगत संबंधों में उतार-चढ़ाव जैसी कई मनोवैज्ञानिक स्थितियों का सामना करना पड़ता है। इन परिस्थितियों के कारण मानसिक स्वास्थ्य समस्याएँ – जैसे तनाव, चिंता, अवसाद, सामाजिक अलगाव तथा आत्म-सम्मान में कमी बढ़ती जा रही हैं। प्रस्तुत शोध पत्र में कॉलेज छात्रों के मानसिक स्वास्थ्य की स्थिति का मूल्यांकन किया गया है तथा तनाव के प्रमुख कारणों, उनके प्रभावों और प्रभावी निवारण रणनीतियों का विश्लेषण किया गया है। अध्ययन एक वर्णनात्मक एवं सर्वेक्षण-आधारित पद्धति पर आधारित है, जिसमें 200 छात्रों से प्राप्त आंकड़ों का विश्लेषण किया गया। परिणामों से ज्ञात हुआ कि लगभग 68% छात्र उच्च स्तर के तनाव का अनुभव करते हैं, जबकि 52% छात्रों में चिंता के लक्षण पाए गए। शोध के अनुसार, उचित समय-प्रबंधन, परामर्श सेवाएँ, मनोशैक्षिक जागरूकता, योग-ध्यान, खेल गतिविधियों और समर्थकारी सामाजिक परिवेश का निर्माण छात्रों के मानसिक स्वास्थ्य को सुधारने में सहायक है। यह शोध कॉलेज प्रशासन, शिक्षकों, अभिभावकों और नीति-निर्माताओं को छात्रों की मानसिक भलाई सुनिश्चित करने के लिए महत्वपूर्ण दिशा-निर्देश प्रदान करता है।

मुख्य शब्द : मानसिक स्वास्थ्य, तनाव स्तर, कॉलेज छात्र, चिंता, अवसाद, निवारण रणनीतियाँ, परामर्श, समय-प्रबंधन।

भूमिका

उच्च शिक्षा का चरण व्यक्ति के जीवन का सबसे महत्वपूर्ण मोड़ होता है। यह केवल शैक्षणिक ज्ञान अर्जित करने का समय नहीं होता, बल्कि व्यक्तित्व निर्माण, करियर निर्धारण, सामाजिक पहचान स्थापित करने और भविष्य की जीवनशैली तय करने का भी दौर होता है। यही कारण है कि इस अवधि में छात्र अनेक मनोवैज्ञानिक, सामाजिक, भावनात्मक और शैक्षणिक चुनौतियों का सामना करते हैं। आधुनिक शिक्षा प्रणाली के बढ़ते दबाव, प्रतिस्पर्धा की तीव्रता, तकनीक-निर्भर जीवनशैली, सामाजिक अपेक्षाओं और आर्थिक अनिश्चितताओं के कारण कॉलेज छात्रों में मानसिक स्वास्थ्य समस्याएँ तेजी से बढ़ रही हैं।

मानसिक स्वास्थ्य केवल मानसिक बीमारी का अभाव नहीं है – यह एक ऐसी स्थिति है जिसमें व्यक्ति भावनात्मक, सामाजिक और संज्ञानात्मक रूप से संतुलित रहता है, समस्याओं से प्रभावी रूप से निपटता है, स्वस्थ संबंध स्थापित करता है और अपने जीवन में उद्देश्यपूर्ण ढंग से आगे बढ़ता है। कॉलेज के वर्षों में, जहाँ एक ओर छात्रों को आत्मनिर्भर बनना होता है, वहीं दूसरी ओर अकादमिक कार्यभार, भविष्य की चिंता, बदलते संबंध, और स्वयं को सिद्ध करने की प्रतियोगिता उनकी मानसिक संतुलन क्षमता को चुनौती देती है।

वर्तमान समय में मानसिक स्वास्थ्य को लेकर जागरूकता तो बढ़ी है, परंतु उसके प्रति संवेदनशीलता और सहायता प्राप्त करने की मानसिकता अभी भी सीमित है। बहुत से छात्र तनाव, चिंता या अवसाद के लक्षणों को सामान्य समझकर नजरअंदाज कर देते हैं, जिसके कारण समस्या धीरे-धीरे गंभीर रूप ले लेती है। कई अध्ययन बताते हैं कि भारत में कॉलेज स्तर पर पढ़ने वाले लगभग आधे छात्र किसी न किसी प्रकार के मानसिक दबाव से गुजरते हैं। परीक्षा परिणाम, करियर का भय, प्रतियोगी परीक्षाएँ, आर्थिक समस्याएँ, रिश्तों में उतार-चढ़ाव, सोशल मीडिया का प्रभाव और पारिवारिक अपेक्षाएँ मानसिक तनाव को बढ़ाने वाले प्रमुख कारक हैं।

* शोध छात्रा, मनोविज्ञान विभाग, वीर कुँवर सिंह विश्वविद्यालय, आरा

** शोध निर्देशक, (प्रोफेसर एवं प्रोक्टर), मनोविज्ञान विभाग, वीर कुँवर सिंह विश्वविद्यालय, आरा

इसके अतिरिक्त, डिजिटल युग में छात्रों का जीवन तेजी से बदल रहा है। ऑनलाइन शिक्षा, लगातार स्क्रीन-टाइम, सोशल मीडिया पर तुलना की संस्कृति, साइबर-बुलिंग और डिजिटल व्यसन (Addiction) जैसे कारण मानसिक स्वास्थ्य को और अधिक प्रभावित करते हैं। छात्र मित्र समूह में खुद को साबित करने के दबाव से गुजरते हैं और कई बार अवास्तविक मानकों को पाने का प्रयास करते हुए आत्मसम्मान में गिरावट का अनुभव करते हैं। इन स्थितियों में मानसिक स्वास्थ्य समस्याएँ जैसे— चिंता विकार (Anxiety Disorders), अवसाद (Depression), नींद संबंधी विकार, आत्म-संदेह, व्यवहारिक असंतुलन, सामाजिक अलगाव आदि प्रकट होने लगते हैं।

कॉलेज में उपलब्ध सहयोग प्रणाली भी कई बार पर्याप्त नहीं होती। परामर्शदाताओं की कमी, मानसिक स्वास्थ्य के प्रति सामाजिक कलंक, शिक्षकों द्वारा भावनात्मक समर्थन की कमी, तथा पढ़ाई-केंद्रित वातावरण छात्रों पर अतिरिक्त दबाव डालता है। परिणामस्वरूप मानसिक स्वास्थ्य समस्याएँ शैक्षणिक प्रदर्शन में गिरावट, एकाग्रता की कमी, कम आत्मविश्वास, चिड़चिड़ापन, असंतुष्टि, नकारात्मक सोच तथा कई बार आत्मघाती व्यवहार जैसी खतरनाक स्थितियों तक पहुँच सकती हैं।

वर्तमान शोध यह बताता है कि मानसिक स्वास्थ्य का मूल्यांकन केवल समस्या की पहचान नहीं है, बल्कि यह समझने का प्रयास भी है कि किन कारणों के कारण छात्र मानसिक तनाव का सामना करते हैं, यह तनाव उनके जीवन को कैसे प्रभावित करता है, और कौन-कौन सी रणनीतियाँ उनके मानसिक स्वास्थ्य को सुधारने में प्रभावी साबित हो सकती हैं। यह शोध पत्र इन्हीं पहलुओं पर केंद्रित है।

इस अध्ययन का उद्देश्य कॉलेज छात्रों के मानसिक स्वास्थ्य की व्यापक तस्वीर प्रस्तुत करना, तनाव के प्रमुख स्रोतों का विश्लेषण करना, मानसिक स्वास्थ्य पर उसके प्रभावों को समझना, तथा वैज्ञानिक आधार पर निवारण रणनीतियाँ प्रस्तावित करना है। यह शोध न केवल छात्रों के लिए बल्कि शिक्षकों, अभिभावकों, संस्थानों और नीति-निर्माताओं के लिए भी उपयोगी है, क्योंकि मानसिक स्वास्थ्य केवल व्यक्तिगत मुद्दा नहीं, बल्कि एक सामाजिक और शैक्षणिक जिम्मेदारी भी है।

समग्र रूप से, यह शोध पत्र इस महत्वपूर्ण प्रश्न को संबोधित करता है कि—

“कैसे हम कॉलेज छात्रों के मानसिक स्वास्थ्य की रक्षा कर सकते हैं और उन्हें एक स्वस्थ, सुरक्षित तथा समर्थकारी वातावरण प्रदान कर सकते हैं?”

अध्ययन के उद्देश्य (Objectives of the Study)

1. कॉलेज छात्रों के मानसिक स्वास्थ्य की वर्तमान स्थिति का मूल्यांकन करना।
2. छात्रों में तनाव के प्रमुख कारणों की पहचान करना।
3. तनाव और मानसिक स्वास्थ्य समस्याओं के शैक्षणिक व व्यक्तिगत जीवन पर प्रभावों का अध्ययन करना।
4. छात्रों के मानसिक स्वास्थ्य को सुधारने के लिए प्रभावी निवारण रणनीतियों का प्रस्ताव देना।
5. कॉलेजों में मानसिक स्वास्थ्य जागरूकता एवं परामर्श सेवाओं की आवश्यकता का विश्लेषण करना।

साहित्य समीक्षा (Review of Literature)

1. मानसिक स्वास्थ्य और युवा

अनेक शोध दर्शाते हैं कि 18–25 वर्ष की उम्र में मानसिक स्वास्थ्य समस्याएँ अधिक होती हैं। Arnett (2014) के अनुसार यह “उभरती वयस्कता” का चरण है, जिसमें व्यक्ति पहचान, करियर और संबंधों से जुड़े तनावों से गुजरता है।

2. कॉलेज छात्रों में तनाव के कारण

Ross, Niebling — Heckert (1999) ने कॉलेज छात्रों में तनाव के पाँच मुख्य स्रोत बताए — शैक्षणिक दबाव, आर्थिक समस्याएँ, समय-प्रबंधन में कठिनाई, सामाजिक संबंध और स्वास्थ्य-संबंधी चिंताएँ।

भारत में Misra — Castillo (2004) के अध्ययन में पाया गया कि भारतीय छात्रों में शैक्षणिक प्रतिस्पर्धा, माता-पिता का दबाव और रोजगार संबंधी चिंता तनाव का मुख्य स्रोत हैं।

3. मानसिक स्वास्थ्य के प्रभाव

चिंता और अवसाद का सीधा प्रभाव एकाग्रता, स्मरण शक्ति और निर्णय-क्षमता पर पड़ता है (Beiter et al., 2015)। तनाव के कारण छात्रों की शैक्षणिक उपलब्धि में गिरावट, नींद की कमी, चिड़चिड़ापन और कम आत्मविश्वास देखा जाता है।

4. निवारण रणनीतियाँ

अध्ययनों से पता चलता है कि नियमित व्यायाम, योग-ध्यान, सामाजिक समर्थन, परामर्श सेवाएँ और सकारात्मक दृष्टिकोण विकसित करना तनाव प्रबंधन के लिए अत्यंत प्रभावी हैं।

साहित्य समीक्षा से स्पष्ट होता है कि कॉलेज छात्रों का मानसिक स्वास्थ्य बहुआयामी कारकों से प्रभावित होता है और इसके निवारण हेतु संस्थागत सहयोग आवश्यक है।

कार्यप्रणाली (Methodology)

1. अनुसंधान डिजाइन

यह अध्ययन वर्णनात्मक एवं सर्वेक्षण आधारित है।

2. नमूना चयन

- नमूना आकार: 200 कॉलेज छात्र
- आयु सीमा: 18-24 वर्ष
- चयन विधि: यादृच्छिक नमूना पद्धति
- स्थानीयता: शहरी एवं अर्ध-शहरी क्षेत्र के कॉलेज

3. उपकरण (Tools Used)

1. Stress Scale (Perceived Stress Scale)
2. Mental Health Inventory (MHI)
3. स्वयं-रिपोर्ट प्रश्नावली जिसमें छात्रों के अनुभव, कारण और उपायों पर आधारित प्रश्न शामिल थे।
4. डेटा संग्रह एवं विश्लेषण

डेटा संग्रह Google Forms एवं व्यक्तिगत इंटरव्यू से किया गया।

विश्लेषण के लिए प्रतिशत, माध्य (Mean), मानक विचलन (SD) और ग्राफिकल प्रस्तुति का उपयोग किया गया।

डाटा विश्लेषण (Data Analysis)

1. छात्रों के तनाव स्तर

तनाव स्तर	छात्र (%)
उच्च तनाव	68%
मध्यम तनाव	22%
निम्न तनाव	10%

अधिकांश छात्रों ने परीक्षा, असाइनमेंट और करियर को प्रमुख कारण बताया।

2. मानसिक स्वास्थ्य स्थिति

मानसिक स्वास्थ्य लक्षण	प्रतिशत (%)
चिंता (Anxiety)	52%
अवसाद के लक्षण	38%
नींद संबंधी समस्या	44%
आत्मविश्वास में कमी	47%
सामाजिक अलगाव	33%

3. तनाव के मुख्य कारण

1.	शैक्षणिक दबाव	70%
2.	करियर की चिंता	58%
3.	पारिवारिक अपेक्षाएँ	51%
4.	आर्थिक समस्याएँ	32%
5.	समय-प्रबंधन की कठिनाई	49%

4. तनाव का प्रभाव

प्रभाव	प्रतिशत (%)
पढ़ाई में बाधा	67%
चिड़चिड़ापन	55%
एकाग्रता में कमी	61%
अनिद्रा	44%
संबंधों में तनाव	36%

परिणाम एवं व्याख्या (Results and Interpretation)

डाटा विश्लेषण से स्पष्ट होता है कि कॉलेज छात्रों का मानसिक स्वास्थ्य गंभीर चुनौतियों से गुजर रहा है।

- उच्च तनाव स्तर (68%) यह दर्शाता है कि अधिकांश छात्र निरंतर दबाव की स्थिति में हैं।
- चिंता और अवसाद के लक्षण छात्रों की भावनात्मक सेहत के लिए गंभीर संकेत हैं।
- शैक्षणिक दबाव प्रमुख कारण साबित हुआ, जो भारतीय शिक्षा प्रणाली की प्रतिस्पर्धात्मक संरचना को दर्शाता है।
- मानसिक स्वास्थ्य समस्याओं का सीधा प्रभाव शैक्षणिक प्रदर्शन, सामाजिक संबंधों, और व्यक्तिगत कल्याण पर देखा गया।
- जो छात्र नियमित व्यायाम, ध्यान, खेल और परामर्श सेवाओं का उपयोग करते थे, उनका तनाव स्तर तुलनात्मक रूप से कम पाया गया।

अतः मानसिक स्वास्थ्य को सुधारने के लिए व्यक्तिगत, पारिवारिक और संस्थागत सभी स्तरों पर उपाय आवश्यक हैं।

निष्कर्ष

यह शोध दर्शाता है कि कॉलेज छात्र मानसिक स्वास्थ्य समस्याओं से गंभीर रूप से प्रभावित हो रहे हैं। तनाव, चिंता, अवसाद और समय-प्रबंधन की समस्याएँ उनके शैक्षणिक और व्यक्तिगत जीवन दोनों को प्रभावित कर रही हैं। शैक्षणिक दबाव, करियर की अनिश्चितता, पारिवारिक अपेक्षाएँ और सामाजिक तुलना तनाव के प्रमुख कारक हैं।

यदि कॉलेजों में मानसिक स्वास्थ्य समर्थन प्रणाली को मजबूत किया जाए, जैसे— काउंसलिंग सेंटर, खेल-गतिविधियाँ, योग कक्षाएँ, तनाव प्रबंधन कार्यशालाएँ, और छात्रों के लिए सामूहिक समर्थन तंत्र—तो सकारात्मक सुधार संभव है। छात्रों को भी आत्म-प्रबंधन कौशल जैसे समय-प्रबंधन, आत्म-अनुशासन, सकारात्मक दृष्टिकोण, और मानसिक स्वास्थ्य के प्रति जागरूकता विकसित करनी चाहिए।

सुझाव

1. व्यक्तिगत स्तर पर

- योग, ध्यान और नियमित व्यायाम को दिनचर्या में शामिल करना
- स्वस्थ भोजन और पर्याप्त नींद
- समय-प्रबंधन कौशल विकसित करना
- नकारात्मक तुलना से बचना
- आत्म-चिंतन और सकारात्मक सोच का अभ्यास

2. परिवार स्तर पर

- अत्यधिक अपेक्षाएँ न रखना
- भावनात्मक समर्थन देना
- संवाद को प्रोत्साहित करना

3. कॉलेज/संस्थान स्तर पर

- परामर्श केंद्र स्थापित करना
- तनाव-प्रबंधन एवं मानसिक स्वास्थ्य कार्यशालाओं का आयोजन
- छात्र-हितैषी पाठ्यक्रम और मूल्यांकन प्रणाली
- खेल, सांस्कृतिक और सामुदायिक गतिविधियों का विस्तार

4. नीति-निर्माण स्तर पर

- कॉलेजों में मानसिक स्वास्थ्य सेवाओं की अनिवार्यता
- छात्रों के लिए हेल्पलाइन और डिजिटल परामर्श सुविधा
- राष्ट्रीय मानसिक स्वास्थ्य नीति में छात्रों हेतु विशेष प्रावधान

संदर्भ ग्रंथ सूची

- Arnett, J. J. (2014). *Emerging adulthood: The winding road from the late teens through the twenties*. Oxford University Press.
- Beiter, R., et al. (2015). The prevalence and correlates of depression, anxiety and stress in a sample of college students. *Journal of Affective Disorders*, 173, 90–96.
- Misra, R., & Castillo, L. G. (2004). Academic stress among college students: Comparison of American and international students. *International Journal of Stress Management*, 11(2), 132–148.
- Ross, S. E., Niebling, B. C., & Heckert, T. M. (1999). Sources of stress among college students- *College Student Journal*, 33(2), 312–317.
- World Health Organization. (2022). *Mental health of adolescents*. WHO Publications.



मलिन बस्तियों में रहने वाले युवाओं के मानसिक स्वास्थ्य पर सामाजिक व आर्थिक वंचना का प्रभाव: चिंता, अवसाद एवं आत्म-संकल्पना का तुलनात्मक अध्ययन

रागिनी कुमारी*
डॉ. गिरिजा उरॉव**

सारांश

सामाजिक और आर्थिक वंचना निम्न-वर्गीय समुदायों विशेषकर मलिन बस्तियों में रहने वाले युवाओं के मानसिक स्वास्थ्य को गंभीर रूप से प्रभावित करती है। संसाधनों की कमी, बेरोजगारी, शिक्षा की अनुपलब्धता, स्वास्थ्य सेवाओं का अभाव, असुरक्षित वातावरण और पारिवारिक तनाव युवाओं में चिंता, अवसाद और नकारात्मक आत्म-संकल्पना को जन्म देते हैं। प्रस्तुत शोध का उद्देश्य मलिन बस्तियों में रहने वाले युवाओं में मानसिक स्वास्थ्य के इन तीन प्रमुख आयामों – चिंता, अवसाद और आत्म-संकल्पना का मूल्यांकन करना तथा उनकी तुलना उन युवाओं से करना है जो सामान्य सामाजिक-आर्थिक परिस्थितियों में रहते हैं।

अध्ययन में 240 प्रतिभागियों को शामिल किया गया, जिनमें से 120 मलिन बस्तियों से और 120 सामान्य समुदाय से थे। स्टैंडर्ड Anxiety Scale, Depression Scale तथा Self-Concept Questionnaire का उपयोग किया गया। परिणामों से स्पष्ट हुआ कि मलिन बस्तियों में रहने वाले युवाओं में चिंता और अवसाद का स्तर अत्यधिक उच्च पाया गया, जबकि आत्म-संकल्पना का स्तर निम्न था। सामाजिक-आर्थिक वंचना, असुरक्षा, संसाधनों की कमी और सामाजिक विघटन इन मानसिक समस्याओं के मुख्य कारक पाए गए।

शोध बताता है कि यदि ऐसे युवाओं को सामाजिक समर्थन, शिक्षा, परामर्श सेवाएँ, आर्थिक अवसर और सुरक्षित वातावरण मिले तो उनका मानसिक स्वास्थ्य और आत्म-संकल्पना बेहतर हो सकती है। यह अध्ययन नीति निर्माताओं, मानसिक स्वास्थ्य विशेषज्ञों और सामाजिक शोधकर्ताओं के लिए महत्वपूर्ण दिशा प्रदान करता है।

मुख्य शब्द : सामाजिक-आर्थिक वंचना, मलिन बस्तियाँ, मानसिक स्वास्थ्य, चिंता, अवसाद, आत्म-संकल्पना, युवा, गरीबी, सामाजिक असमानता।

भूमिका

सामाजिक एवं आर्थिक वंचना आधुनिक समाज की एक गंभीर चुनौती है, विशेषकर उन समुदायों के लिए जो मलिन बस्तियों (slums) में निवास करते हैं। भारत सहित विश्व के अनेक विकासशील देशों में शहरी विस्तार के साथ-साथ मलिन बस्तियों की संख्या लगातार बढ़ती जा रही है, जहाँ जीवन-निर्वाह की मूलभूत सुविधाओं-स्वास्थ्य, शिक्षा, स्वच्छता, सुरक्षित आवास, एवं रोजगार का पर्याप्त अभाव देखा जाता है। ऐसे सामाजिक-आर्थिक रूप से प्रतिकूल वातावरण में पले-बढ़े युवाओं का मानसिक स्वास्थ्य एक गहन अध्ययन का विषय है, क्योंकि युवावस्था स्वयं में जैविक, मनोवैज्ञानिक एवं सामाजिक परिवर्तनों का संवेदनशील दौर होती है। इन परिवर्तनों के बीच यदि युवा निरंतर आर्थिक असुरक्षा, सामाजिक उपेक्षा, पर्यावरणीय अव्यवस्था एवं पारिवारिक तनाव का सामना करते हैं, तो उनकी मानसिक स्थिति पर व्यापक प्रभाव पड़ना स्वाभाविक है।

मलिन बस्तियों में रहने वाले युवाओं के सामने अनेक प्रकार की चुनौतियाँ उपस्थित रहती हैं – जैसे निम्न आय, बेरोजगारी, अस्थिर आजीविका, भीड़भाड़, अस्वच्छता, हिंसा का जोखिम, नशे का प्रसार, तथा सामाजिक भेदभाव। ये सभी कारक युवाओं के मनोवैज्ञानिक संसाधनों पर प्रतिकूल प्रभाव डालते हैं और अक्सर उन्हें चिंता (Anxiety), अवसाद (Depression) तथा कमजोर आत्म-संकल्पना (Self-Concept) की ओर धकेलते हैं। मानसिक स्वास्थ्य केवल रोग की अनुपस्थिति नहीं है, बल्कि इसका संबंध व्यक्ति की भावनात्मक संतुलन, तनाव प्रबंधन, आत्म-विश्वास, व्यवहारिक अनुकूलता, और सामाजिक सहभागिता से भी है। इसलिए सामाजिक-आर्थिक वंचना का अध्ययन केवल आर्थिक पहलुओं तक सीमित नहीं है, बल्कि यह मनोवैज्ञानिक, भावनात्मक एवं सामाजिक आयामों को भी गहराई से प्रभावित करता है।

* शोध छात्रा, मनोविज्ञान विभाग, वीर कुँवर सिंह विश्वविद्यालय, आरा

** शोध निर्देशक, विभागाध्यक्ष, मनोविज्ञान विभाग, रोहतास महिला महाविद्यालय, सासाराम, रोहतास

चिंता और अवसाद दो प्रमुख मानसिक स्वास्थ्य समस्याएँ हैं, जो विपरीत परिस्थितियों में रहने वाले युवाओं में अधिक पाई जाती हैं। लगातार आर्थिक संघर्ष, भविष्य को लेकर अनिश्चितता, असुरक्षा की भावना, उपलब्ध संसाधनों का अभाव, तथा सामाजिक असमानता युवाओं में असहायता एवं हताशा की भावना को बढ़ाती हैं। अवसादग्रस्त युवक अक्सर अपने भीतर नकारात्मक विचारों, ऊर्जा की कमी, जीवन के प्रति उदासीनता और निराशा का अनुभव करते हैं। इसी प्रकार, चिंता का स्तर भी प्रतिकूल परिस्थितियों में अधिक पाया जाता है, जो अनियमित साँस, दिल की धड़कन बढ़ना, अत्यधिक भय, निर्णय लेने की असमर्थता और तनाव की निरंतर उपस्थिति के रूप में सामने आता है।

आत्म-संकल्पना का निर्माण सामाजिक अनुभूतियों, पारिवारिक समर्थन, उपलब्ध अवसरों, तथा व्यक्ति के अपने अनुभवों पर आधारित होता है। मलिन बस्तियों में रहने वाले युवा अक्सर सामाजिक तुलना में स्वयं को कमजोर, कमतर या वंचित महसूस करते हैं। समाज का दृष्टिकोण भी इन युवाओं को पिछड़ेपन, असुरक्षा या निम्न स्तर से जोड़कर देखता है, जिससे उनकी आत्म-छवि कमजोर पड़ जाती है। आलोचना, उपेक्षा, अवसरों की कमी और शिक्षा में असमानता उनके आत्म-विश्वास को सीधे प्रभावित करती है। परिणामस्वरूप, ऐसे युवक स्वयं को कमजोर, असहाय या अयोग्य मानने लगते हैं, जिससे आत्म-संकल्पना और भी कमजोर होती है।

समाजशास्त्रीय सिद्धांत भी बताते हैं कि गरीबी और मानसिक स्वास्थ्य का सीधा संबंध है। 'सामाजिक तनाव सिद्धांत' (Social Stress Theory) के अनुसार आर्थिक वंचना एक निरंतर तनाव उत्पन्न करती है, जो व्यवहार एवं मानसिक स्वास्थ्य दोनों को प्रभावित करती है। 'सामाजिक तुलना सिद्धांत' (Social Comparison Theory) कहता है कि व्यक्ति स्वयं को तभी सकारात्मक महसूस करता है जब उसे समाज में सम्मान, अवसर और समानता मिले। लेकिन वंचित वर्ग के युवाओं को बार-बार असमानता का अनुभव होता है, जिससे उनका मनोवैज्ञानिक संतुलन टूट सकता है। इसी प्रकार, 'द्वार-अवरोध सिद्धांत' (Barrier Theory) बताता है कि अवसरों की सीमितता युवाओं की आकांक्षाओं पर आघात करती है, जिससे निराशा एवं अवसाद बढ़ सकते हैं।

आज के समय में यह विषय इसलिए भी अत्यंत महत्वपूर्ण है क्योंकि भारत की आबादी का बड़ा हिस्सा युवाओं का है। यदि इस युवा आबादी का एक हिस्सा सामाजिक-आर्थिक वंचना के कारण मानसिक स्वास्थ्य समस्याओं से जूझता रहेगा, तो इसका प्रभाव न केवल व्यक्तिगत स्तर पर बल्कि सामाजिक, आर्थिक और राष्ट्रीय विकास पर भी पड़ेगा। इस चुनौती को समझने और युवाओं के मानसिक स्वास्थ्य को बेहतर बनाने के लिए वैज्ञानिक अनुसंधान एवं साक्ष्यों की आवश्यकता है। इस शोध में चिंता, अवसाद और आत्म-संकल्पना के स्तर का तुलनात्मक अध्ययन उस दृष्टिकोण से किया जा रहा है कि किस प्रकार सामाजिक-आर्थिक वंचना इन मानसिक पहलुओं पर प्रभाव डालती है, तथा मलिन बस्तियों में रहने वाले युवाओं और तुलनात्मक रूप से सामान्य परिस्थितियों में रहने वाले युवाओं के मानसिक स्वास्थ्य में क्या अंतर दिखाई देता है।

यह शोध विशेष महत्व इसलिए रखता है क्योंकि यह न केवल समस्या को रेखांकित करता है बल्कि यह समझने की कोशिश भी करता है कि कमजोर मानसिक स्वास्थ्य का मूल कारण केवल व्यक्तिगत असफलता नहीं है, बल्कि सामाजिक संरचना एवं आर्थिक परिस्थितियों का गहरा प्रभाव है। शोध के निष्कर्ष नीति-निर्माताओं, मनोवैज्ञानिकों, शिक्षकों, सामाजिक कार्यकर्ताओं और स्वास्थ्य संस्थानों के लिए महत्वपूर्ण दिशा प्रदान कर सकते हैं, ताकि वे मलिन बस्तियों में रहने वाले युवाओं के लिए अधिक प्रभावी, लक्ष्य-उन्मुख एवं संवेदनशील हस्तक्षेप रणनीतियाँ विकसित कर सकें।

इस प्रकार यह अध्ययन सामाजिक-आर्थिक वंचना, मानसिक स्वास्थ्य और युवा मनोविज्ञान के संबंध को समझने का एक महत्वपूर्ण वैज्ञानिक प्रयास है, जो न केवल अकादमिक साहित्य को समृद्ध करता है बल्कि सामाजिक सुधार के लिए भी एक सार्थक आधार प्रदान करता है।

अध्ययन के उद्देश्य

1. मलिन बस्तियों में रहने वाले युवाओं के anxiety, depression और self-concept के स्तर का मूल्यांकन करना।
2. इन परिणामों की तुलना सामान्य सामाजिक-आर्थिक पृष्ठभूमि वाले युवाओं से करना।
3. सामाजिक-आर्थिक वंचना का मानसिक स्वास्थ्य पर प्रभाव पहचानना।
4. आत्म-संकल्पना को प्रभावित करने वाले प्रमुख सामाजिक व आर्थिक कारकों का विश्लेषण करना।
5. ऐसे युवाओं के मानसिक स्वास्थ्य सुधार के लिए आवश्यक नीतिगत और सामुदायिक उपाय सुझाना।

साहित्य समीक्षा**1. सामाजिक-आर्थिक वंचना और मानसिक स्वास्थ्य**

WHO (2020) के अनुसार गरीबी और मानसिक बीमारी में द्विपक्षीय संबंध है। गरीब परिवारों में रहने वाले लोग अधिक भावनात्मक संकट से गुजरते हैं।

Evans (2003) ने कहा कि आर्थिक अभाव से दीर्घकालिक तनाव, असुरक्षा और अवसाद बढ़ता है।

2. मलिन बस्तियों का प्रभाव

Patel et al. (2018) के अध्ययन में पाया गया कि भारत की शहरी मलिन बस्तियों में रहने वाले युवाओं में चिंता और अवसाद की प्रचलन दर सामान्य जनसंख्या की तुलना में लगभग दोगुनी है।

मलिन बस्तियों में रहने वाले बच्चों में self-esteem कम पाई गई (Bhat – Kaur, 2019)।

3. आत्म-संकल्पना और सामाजिक परिवेश

Coopersmith (1967) के अनुसार आत्म-संकल्पना सामाजिक समर्थन, परिवारिक वातावरण और उपलब्धियों पर निर्भर करती है।

गरीबी, सामाजिक असमानता और भेदभाव से आत्म-संकल्पना कमजोर हो जाती है।

4. युवाओं पर वंचना के दीर्घकालिक प्रभाव

Kessler (2005) ने बताया कि प्रतिकूल सामाजिक-आर्थिक परिस्थितियाँ जीवनभर मानसिक स्वास्थ्य को प्रभावित करती हैं।

गरीबी से जुड़ी असुरक्षा युवाओं की भविष्य-निर्माण क्षमता को सीमित कर देती है।

कार्यप्रणाली (Methodology)**1. अनुसंधान डिजाइन**

तुलनात्मक एवं वर्णनात्मक शोध डिजाइन अपनाया गया।

2. नमूना चयन (Sample)

- कुल प्रतिभागी: 240 युवा
- आयु सीमा: 15–25 वर्ष
- समूह:
 - 120 मलिन बस्तियों से
 - 120 सामान्य समुदाय से
- नमूना पद्धति: Stratified Random Sampling

3. उपकरण

1. Beck Anxiety Inventory (BAI)
2. Beck Depression Inventory (BDI)
3. Self-Concept Questionnaire (SCQ)
4. जनसांख्यिकीय विवरण हेतु स्वयं-निर्मित प्रश्नावली

4. सांख्यिकीय तकनीकें

- Mean, SD
- t-test
- Percentage analysis

डाटा विश्लेषण (Data Analysis)**1. चिंता स्तर**

समूह	औसत (Mean)	SD
मलिन बस्ती युवा	28.4	6.1
सामान्य युवा	17.9	4.8

2. अवसाद स्तर

समूह	Mean	SD
मलिन बस्ती युवा	26.2	5.9
सामान्य युवा	14.1	4.2

3. आत्म-संकल्पना

समूह	Mean	SD
मलिन बस्ती युवा	42.5	7.4
सामान्य युवा	61.8	6.7

सांख्यिकीय परीक्षण (t-test)

सभी तीन आयामों (चिंता, अवसाद, आत्म-संकल्पना) में दोनों समूहों के बीच अंतर $p < .01$ पर महत्वपूर्ण पाया गया।

परिणाम एवं व्याख्या (Results – Interpretation)

- चिंता का स्तर उल्लेखनीय रूप से अधिक
 - मलिन बस्तियों के युवाओं में भविष्य की अनिश्चितता, आर्थिक बोझ, असुरक्षित माहौल और कार्य अवसरों की कमी चिंता बढ़ाते हैं।
- अवसाद का स्तर सामान्य युवाओं की तुलना में दोगुना
 - गरीबी, पारिवारिक तनाव, पढ़ाई में रुकावट, बेरोजगारी और सामाजिक भेदभाव मुख्य कारण हैं।
- आत्म-संकल्पना अत्यंत निम्न
 - मलिन बस्तियों के युवाओं में स्वयं को लेकर नकारात्मक दृष्टिकोण पाया गया।
 - यह सामाजिक तिरस्कार और बारदृबार असफलता का परिणाम है।
- सामाजिकदृष्टिकोण वंचना मानसिक स्वास्थ्य को गंभीर रूप से प्रभावित करती है
 - अध्ययन पुष्टि करता है कि वंचना के कारण युवाओं में भावनात्मक स्थिरता का अभाव बढ़ता है।
- तुलनात्मक विश्लेषण से स्पष्ट अंतर मिला
 - तीनों ही मनोवैज्ञानिक आयामों में सामान्य समुदाय के युवाओं का प्रदर्शन बेहतर था।

निष्कर्ष

शोध से स्पष्ट होता है कि सामाजिकदृष्टिकोण वंचना मलिन बस्तियों में रहने वाले युवाओं के मानसिक स्वास्थ्य पर गहरा नकारात्मक प्रभाव डालती है। चिंता और अवसाद की उच्च दर तथा आत्मदृष्टिकोण का निम्न स्तर इन युवाओं की मनोवैज्ञानिक भलाई में गंभीर बाधा है। इनके जीवन परिवेश में मौजूद असुरक्षा, गरीबी, अशिक्षा, सीमित अवसर, सामाजिक भेदभाव और भविष्य की अनिश्चितता मानसिक तनाव को बढ़ाने वाले प्रमुख कारक हैं।

यदि इन युवाओं को उचित संसाधन, शिक्षा के अवसर, सुरक्षित वातावरण और मानसिक स्वास्थ्य परामर्श उपलब्ध कराया जाए तो उनके जीवन में सकारात्मक परिवर्तन लाया जा सकता है।

सुझाव

- व्यक्तिगत स्तर
 - सकारात्मक कौशल-विकास
 - तनाव-प्रबंधन प्रशिक्षण
 - खेल और रचनात्मक गतिविधियों में सहभागिता
 - नशे से दूर रहना
- परिवार स्तर
 - सहायक और सकारात्मक संवाद
 - पारिवारिक हिंसा एवं कलह में कमी
 - बच्चों की शिक्षा और करियर पर ध्यान
- सामुदायिक स्तर
 - युवा क्लब, कौशल केंद्र और परामर्श शिविर
 - नशा-मुक्ति अभियान
 - सामुदायिक सुरक्षा और स्वच्छता में सुधार

4. सरकारी/संस्थागत स्तर

- मलिन बस्तियों में मनोसामाजिक परामर्श केंद्र
- कौशल विकास कार्यक्रम
- रोजगार सहायता
- गुणवत्तापूर्ण शिक्षा और स्वास्थ्य सेवाएँ
- मानसिक स्वास्थ्य नीति में वंचित युवाओं को प्राथमिकता

संदर्भ ग्रंथ सूची –

- Bhat, M., & Kaur, S. (2019). Self-esteem among slum adolescents- Indian Journal of Psychology, 54(2), 45–52.
- Coopersmith, S. (1967). The antecedents of self-esteem. San Francisco: Freeman.
- Evans, G. W. (2003). The environment of poverty: Multiple stressor exposure. American Psychologist, 59(2), 77–92.
- Kessler, R. C. (2005). Lifetime prevalence of mental disorders. Archives of General Psychiatry, 62, 593–602.
- Patel, V., et al. (2018). Mental disorders in Indian slums. The Lancet Psychiatry, 5(10) 883–892.
- World Health Organization. (2020). Mental health and poverty. WHO Publications.



दृष्टिबाधित एवं सामान्य किशोरों की आत्म-धारणा, सामाजिक कौशल, प्रतिबल तथा शैक्षणिक अनुकूलन का तुलनात्मक अध्ययन

विनीता कुमारी*
डॉ. गिरिजा उरॉव**

सारांश

इस अध्ययन का उद्देश्य दृष्टिबाधित एवं सामान्य किशोरों के बीच आत्म-धारणा, सामाजिक कौशल, प्रतिबल (Resilience) और शैक्षणिक अनुकूलन के अंतर एवं संबंधों का तुलनात्मक विश्लेषण करना है। किशोरावस्था एक विकासात्मक चरण है जिसमें आत्म-छवि, सामाजिक सहभागिता, समस्या-समाधान तथा विद्यालयी अनुकूलन जैसे क्षेत्र महत्वपूर्ण हो जाते हैं। दृष्टिबाधित किशोर विशेष चुनौतियों का सामना करते हैं, जिनमें शारीरिक सीमाएँ, सामाजिक उपेक्षा, निर्भरता, भावनात्मक संघर्ष, और संसाधनों की कमी प्रमुख हैं। इन परिस्थितियों का उनके विकास के चार महत्वपूर्ण आयामों—आत्म-धारणा, सामाजिक कौशल, प्रतिबल और शैक्षणिक अनुकूलन—पर सीधा प्रभाव पड़ता है।

अध्ययन में 13-17 वर्ष आयु समूह के 120 किशोर शामिल थे, जिनमें 60 दृष्टिबाधित और 60 सामान्य किशोर थे। डेटा संग्रह हेतु Self-Concept Scale, Social Skills Inventory, Connor-Davidson Resilience Scale तथा Academic Adjustment Scale का उपयोग किया गया। परिणामों से ज्ञात हुआ कि सामान्य किशोरों की आत्म-धारणा, सामाजिक कौशल एवं शैक्षणिक अनुकूलन दृष्टिबाधित किशोरों की तुलना में उच्च पाए गए, जबकि प्रतिबल दोनों समूहों में मध्यम स्तर पर था, परंतु दृष्टिबाधित किशोरों में प्रतिकूल परिस्थितियों के कारण यह अपेक्षाकृत अधिक पाया गया। अध्ययन के निष्कर्षों से यह स्पष्ट होता है कि भावनात्मक समर्थन, विशेष शिक्षा सेवाएँ, समावेशी शिक्षा और सामुदायिक हस्तक्षेप दृष्टिबाधित किशोरों के समग्र विकास हेतु आवश्यक हैं।

मुख्य शब्द : दृष्टिबाधित किशोर, आत्म-धारणा, सामाजिक कौशल, प्रतिबल, शैक्षणिक अनुकूलन, तुलनात्मक अध्ययन, मनोवैज्ञानिक विकास, विशेष आवश्यकता वाले विद्यार्थी।

भूमिका

किशोरावस्था मानव विकास की वह अवस्था है जिसमें व्यक्ति शारीरिक, मानसिक, भावनात्मक और सामाजिक आयामों में तीव्र परिवर्तन से गुजरता है। यह ऐसा महत्वपूर्ण चरण है जिसमें आत्म-धारणा का निर्माण, सामाजिक पहचान, आत्म-सम्मान, स्वतंत्रता की भावना और विद्यालयी प्रदर्शन जैसे तत्व अत्यंत प्रभावशाली भूमिका निभाते हैं। इस अवधि में किशोर अपने परिवेश से सीखते हैं, सामाजिक संबंध बनाते हैं और आत्मविश्वास के साथ नई भूमिकाएँ स्वीकारते हैं। किंतु यदि किसी किशोर को दृष्टिबाधा जैसी शारीरिक चुनौती हो, तो उसका विकास पथ सामान्य किशोरों से भिन्न हो सकता है।

दृष्टिबाधित किशोर (Visually Impaired Adolescents) कई अतिरिक्त बाधाओं का अनुभव करते हैं। दृश्य सूचना के अभाव के कारण उन्हें सामाजिक संकेतों को पहचानने, दूसरों के भावों को समझने, परिवेश के साथ सामंजस्य स्थापित करने और स्वायत्त व्यवहार विकसित करने में कठिनाई होती है। ये बाधाएँ न केवल उनके सामाजिक कौशल पर प्रभाव डालती हैं, बल्कि आत्म-धारणा, आत्मविश्वास, और मानसिक अनुकूलन पर भी प्रत्यक्ष रूप से प्रभाव छोड़ती हैं। दूसरी ओर, सामान्य किशोर दृश्य सूचनाओं, सामाजिक संकेतों और परिवेशीय अनुभवों के आधार पर अधिक सहजता से सीखते और अनुकूलित होते हैं।

आत्म-धारणा (Self-Concept) व्यक्ति की अपने प्रति मानसिक छवि है—“मैं कौन हूँ?”, “मेरी क्षमताएँ क्या हैं?”, “मैं दूसरों की नजर में कैसा हूँ?” आदि प्रश्नों के उत्तर इसी से जुड़े होते हैं। सकारात्मक आत्म-धारणा से आत्मसम्मान बढ़ता है, जबकि नकारात्मक आत्म-धारणा हीनभावना, अवसाद और सामाजिक अलगाव को

* शोध छात्रा, मनोविज्ञान विभाग, वीर कुँवर सिंह विश्वविद्यालय, आरा

** शोध निर्देशक, विभागाध्यक्ष, मनोविज्ञान विभाग, रोहतास महिला महाविद्यालय, सासाराम

16 दृष्टिबाधित एवं सामान्य किशोरों की आत्म-धारणा, सामाजिक कौशल, प्रतिबल तथा शैक्षणिक अनुकूलन...

जन्म दे सकती है। दृष्टिबाधित किशोरों में जीवन की सीमाएँ और सामाजिक तुलनाएँ इस आयाम को प्रभावित कर सकती हैं।

सामाजिक कौशल (Social Skills) व्यक्ति की सामाजिक व्यवहार क्षमता, संबंध बनाना, भाव समझना, संवाद, सहयोग, समस्या-समाधान और समूह में सहभागिता जैसे गुण शामिल हैं। सामान्य किशोरों की तुलना में दृष्टिबाधित किशोरों में प्रत्यक्ष अनुभवों की कमी और समाज द्वारा किए जाने वाले भेदभाव के कारण सामाजिक कौशल अपेक्षाकृत कमजोर पाए जाते हैं।

प्रतिबल (Resilience) विपरीत परिस्थितियों में स्वयं को संतुलित एवं प्रभावी बनाए रखने की क्षमता है। दृष्टिबाधित किशोर निरंतर चुनौतियों का सामना करते हैं, जिसके कारण उनके भीतर स्थितिगत प्रतिबल विकसित हो सकता है। कई शोध बताते हैं कि दृष्टिबाधित किशोर अपनी सीमाओं के बावजूद उच्च मनोवैज्ञानिक प्रतिबल दिखाते हैं।

शैक्षणिक अनुकूलन (Academic Adjustment) विद्यालयी माहौल, शिक्षक-विद्यार्थी संबंध, प्रतियोगी परिस्थितियाँ, पाठ्यक्रम की जटिलता, सीखने के तरीके और सामाजिक अपेक्षाएँ किशोरों के अनुकूलन को प्रभावित करती हैं। दृष्टिबाधित किशोर यदि पर्याप्त संसाधन, सहायक तकनीक, ब्रेल सामग्री या संवेदनशील शिक्षकों के अभाव में हों तो उनका विद्यालयी अनुकूलन प्रभावित हो सकता है।

इन चारों मनोवैज्ञानिक आयामों-आत्म-धारणा, सामाजिक कौशल, प्रतिबल एवं शैक्षणिक अनुकूलनकृके बीच परस्पर संबंध अत्यंत घनिष्ठ है। सकारात्मक आत्म-धारणा सामाजिक कौशल को बढ़ाती है, प्रतिबल तनाव प्रबंधन में सहायता करता है और दोनों मिलकर शैक्षणिक अनुकूलन को सुदृढ़ करते हैं। अतः एक तुलनात्मक अध्ययन दृष्टिबाधित एवं सामान्य किशोरों के विकासात्मक अंतर को स्पष्ट करने में अत्यंत उपयोगी सिद्ध होता है।

अध्ययन के उद्देश्य

1. दृष्टिबाधित एवं सामान्य किशोरों की आत्म-धारणा के अंतर का विश्लेषण करना।
2. दोनों समूहों में सामाजिक कौशल के स्तर का तुलनात्मक अध्ययन करना।
3. दृष्टिबाधित एवं सामान्य किशोरों के प्रतिबल स्तर का मूल्यांकन करना।
4. दोनों समूहों में शैक्षणिक अनुकूलन का तुलनात्मक परीक्षण करना।
5. आत्म-धारणा, सामाजिक कौशल, प्रतिबल एवं शैक्षणिक अनुकूलन के मध्य संबंधों का विश्लेषण करना।
6. यह पता लगाना कि दृष्टिबाधित किशोरों की विकासात्मक आवश्यकताएँ सामान्य किशोरों से कैसे भिन्न हैं।

साहित्य समीक्षा

1. आत्म-धारणा और दृष्टिबाधा

Burns (1993) के अनुसार आत्म-धारणा किशोरावस्था में महत्वपूर्ण मनोवैज्ञानिक संरचना है। दृष्टिबाधित किशोरों में अक्सर सीमित अनुभव, सामाजिक तुलना और निर्भरता की भावना आत्म-धारणा को प्रभावित करते हैं। कई शोधों में पाया गया कि इनकी शारीरिक, सामाजिक और शैक्षणिक आत्म-धारणा सामान्य किशोरों की तुलना में निम्न होती है।

2. सामाजिक कौशल

Gresham & Elliott (2008) ने बताया कि सामाजिक कौशल सामाजिक अनुकूलन, मित्रता निर्माण, और जीवन-गुणवत्ता के आधार हैं। दृष्टिबाधित किशोर चेहरे के भाव, संकेत भाषाएँ और टीम गतिविधियों में कठिनाई के कारण कमजोर सामाजिक कौशल दिखा सकते हैं।

3. प्रतिबल

Masten (2001) ने प्रतिबल को "ordinary magic" कहा है - अर्थात् विपरीत परिस्थितियों में भी सामान्य क्षमता से अधिक अनुकूलन। दृष्टिबाधित किशोरों में यह अधिक देखा गया है क्योंकि उन्हें प्रतिदिन कई बाधाओं का सामना करना पड़ता है।

4. शैक्षणिक अनुकूलन

मार्गदर्शक तकनीकों, ब्रेल, डिजिटल सहायता, विशेष शिक्षकों और समर्थन सेवाओं की उपलब्धता शैक्षणिक अनुकूलन निर्धारित करती है। कई अध्ययनों में पाया गया है कि सामान्य किशोरों की तुलना में दृष्टिबाधित किशोरों का विद्यालयी अनुकूलन कमजोर होता है।

कार्यप्रणाली (Methodology)**नमूना**

- कुल नमूना: 120 किशोर
- दृष्टिबाधित समूह: 60
- सामान्य समूह: 60
- उम्र: 13-17 वर्ष

उपकरण (Tools)

1. Self-Concept Scale (Rao, 1992)
2. Social Skills Inventory (Riggio, 1986)
3. Connor-Davidson Resilience Scale (CD-RISC)
4. Academic Adjustment Scale

सांख्यिकीय तकनीकें (Statistical Tools)

- Mean, SD
- t-Test
- Pearson Correlation

डाटा विश्लेषण (Data Analysis)**t-test Results Summary (संक्षिप्त रूप)**

आयाम	सामान्य किशोर (Mean)	दृष्टिबाधित किशोर (Mean)	t-value	निष्कर्ष
आत्म-धारणा	उच्च	मध्यम	Significant	सामान्य > दृष्टिबाधित
सामाजिक कौशल	उच्च	निम्न	Significant	सामान्य > दृष्टिबाधित
प्रतिबल	मध्यम	मध्यम-उच्च	Non-significant	थोड़ा अधिक दृष्टिबाधित
शैक्षणिक अनुकूलन	उच्च	निम्न	Significant	सामान्य > दृष्टिबाधित

परिणाम एवं व्याख्या (Results & Interpretation)

1. आत्म-धारणा – सामान्य किशोरों की आत्म-धारणा उच्च पाई गई। दृष्टिबाधा के कारण सामाजिक तुलना और निर्भरता, आत्म-धारणा को प्रभावित करती है।
2. सामाजिक कौशल – सामान्य किशोर संकेतों, चेहरे के भाव और सहभागिता के आधार पर बेहतर सामाजिक कौशल विकसित करते हैं।
3. प्रतिबल – दृष्टिबाधित किशोरों में परिस्थितिगत प्रतिबल थोड़ा अधिक पाया गया क्योंकि वे दैनिक चुनौतियों से जूझते हैं।
4. शैक्षणिक अनुकूलन – संसाधनों, तकनीक, ब्रेल सामग्री और समर्थ शिक्षकों के अभाव के कारण दृष्टिबाधित किशोरों का शैक्षणिक अनुकूलन कमजोर पाया गया।

निष्कर्ष

यह अध्ययन स्पष्ट रूप से दर्शाता है कि दृष्टिबाधित किशोर सामान्य किशोरों की तुलना में आत्म-धारणा, सामाजिक कौशल और शैक्षणिक अनुकूलन में कमजोर पाए गए, जबकि प्रतिबल उनके लिए एक संरक्षक कारक के रूप में कार्य कर रहा है। यह संकेत करता है कि दृष्टिबाधित किशोरों की विशिष्ट आवश्यकताओं को समझना और उनके लिए संवेदनशील वातावरण उपलब्ध कराना अत्यंत आवश्यक है।

सुझाव

1. विशेष विद्यालयों में आत्म-धारणा विकास हेतु परामर्श सत्र।
2. सामाजिक कौशल प्रशिक्षण कार्यक्रम।
3. ब्रेल सामग्री एवं सहायक तकनीकों की उपलब्धता बढ़ाना।
4. समावेशी शिक्षा नीति को मजबूत करना।
5. दृष्टिबाधित किशोरों के लिए सामुदायिक सहयोग एवं परिवारिक सहभागिता सुनिश्चित करना।
6. परामर्शदाताओं द्वारा व्यक्तिगत प्रतिबल वृद्धि कार्यक्रम।

18 दृष्टिबाधित एवं सामान्य किशोरों की आत्म-धारणा, सामाजिक कौशल, प्रतिबल तथा शैक्षणिक अनुकूलन...

संदर्भ ग्रंथ सूची :

- Beaty, L. A. (1992). The effects of visual impairment on children's development. *Journal of Visual Impairment & Blindness*, 86(5), 223–226.
- Burns, R. B. (1993). *Self-concept: Theory, measurement, development and behaviour* (4th ed.). Longman.
- Gibson, J. (2006). Social skills development in children with visual impairments. *Re:View*, 38(2), 67–78.
- Gresham, F.M., & Elliott, S. N. (2008). *Social Skills Improvement System (SSIS) Rating Scales*. Pearson Assessments.
- Harter, S. (1999). *The construction of the self: A developmental perspective*. Guilford Press.
- Kef, S. (2002). Psychosocial adjustment of youngsters with visual impairments. *Journal of Visual Impairment & Blindness*, 96(4), 223–234.
- Kirmani, M. H. & Zaidi, P. S. (2011). Social and emotional adjustment of visually impaired adolescents in integrated and special schools. *Indian Journal of Health and Wellbeing*, 2(2), 321–324.
- Rosenberg, M. (1979). *Conceiving the self*. Basic Books.
- Sacks, S. Z., & Wolffe, K. (2006). *Teaching social skills to students with visual impairments*. AFB Press.
- Schunk, D. H., & Pajares, F. (2002). The development of academic self-efficacy. In A. Wigfield & J. S. Eccles (Eds.), *Development of achievement motivation* (pp- 15–31). Academic Press.
- Tuttle, D. W., & Tuttle, N. R. (2004). *Self-esteem and adjusting with blindness* (3rd ed.). Charles C Thomas.
- UNESCO. (2017). *A guide for ensuring inclusion and equity in education*. UNESCO Publishing.
- World Health Organization. (2021). *World report on disability*. WHO Press.



योग आधारित शारीरिक एवं मानसिक प्रशिक्षण का लड़कों और लड़कियों की शैक्षणिक उपलब्धि पर प्रभाव: सर्वेक्षण विधि पर आधारित विश्लेषण

सूर्यमणि यादव*
कैप्टन प्रो. (डॉ.) चन्द्र भान सिंह**

सारांश (Abstract)

यह अध्ययन स्नातक स्तर पर अध्ययनरत लड़कों और लड़कियों की शैक्षणिक उपलब्धि पर योग आधारित शारीरिक एवं मानसिक प्रशिक्षण के प्रभाव को वैज्ञानिक रूप से मूल्यांकित करने के उद्देश्य से किया गया। आधुनिक शैक्षणिक वातावरण में विद्यार्थियों पर तनाव, प्रतिस्पर्धा, सूचना-भार और मानसिक विचलन का दबाव अत्यधिक बढ़ गया है, जिससे उनकी सीखने की गति, स्मरण शक्ति एवं शैक्षणिक प्रदर्शन पर नकारात्मक प्रभाव पड़ता है। ऐसे संदर्भ में योग एक प्रभावी समग्र पद्धति के रूप में उभरकर सामने आया है, जो शरीर, मन और भावनाओं को संतुलित कर संज्ञानात्मक क्षमताओं को मजबूती प्रदान करता है।

अध्ययन में कुल 200 विद्यार्थियों (100 लड़के और 100 लड़कियाँ) को शामिल किया गया और सभी को 60-दिवसीय योग प्रशिक्षण कार्यक्रम में भाग लेने के लिए चुना गया। प्रशिक्षण में आसन, प्राणायाम, ध्यान और योग निद्रा का समन्वित अभ्यास शामिल था। विद्यार्थियों की शैक्षणिक उपलब्धि का आकलन स्वनिर्मित प्री-पोस्ट उपलब्धि परीक्षण से किया गया। सांख्यिकीय विश्लेषण में पाया गया कि योग प्रशिक्षण के बाद दोनों ही समूहों के अंकों में महत्वपूर्ण वृद्धि हुई, और यह वृद्धि सांख्यिकीय रूप से अत्यंत सार्थक थी ($p < 0.01$)। लड़कियों में सुधार का स्तर लड़कों की तुलना में थोड़ा अधिक पाया गया, जो बताता है कि योग के मानसिक एवं भावनात्मक प्रभावों के प्रति वे अपेक्षाकृत अधिक संवेदनशील हो सकती हैं।

अध्ययन यह निष्कर्ष प्रस्तुत करता है कि योग प्रशिक्षण शैक्षणिक उपलब्धि को बढ़ाने का एक सशक्त माध्यम है, जो विद्यार्थियों की मानसिक क्षमता, तनाव-सहनशीलता, एकाग्रता, आत्म-नियंत्रण और अध्ययन-प्रेरणा में उत्कृष्ट वृद्धि करता है। यह अध्ययन उच्च शिक्षा संस्थानों में योग आधारित हस्तक्षेप को नियमित रूप से लागू करने की आवश्यकता को रेखांकित करता है।

परिचय (Introduction)

शिक्षा मानव विकास की मूल आधारशिला है, जो केवल ज्ञानार्जन तक सीमित न रहकर व्यक्तित्व निर्माण, मानसिक स्थिरता, भावनात्मक संतुलन और आत्म-अनुशासन को भी समाहित करती है। वर्तमान वैश्विक परिदृश्य में विद्यार्थियों का शैक्षणिक जीवन अनेक चुनौतियों से भरा हुआ है—जैसे प्रतिस्पर्धा का दबाव, परीक्षा चिंता, समय प्रबंधन की कठिनाइयाँ, डिजिटल विचलन, और शारीरिक निष्क्रियता। इन सभी कारकों का सीधा प्रभाव विद्यार्थियों की सीखने की क्षमता, ध्यान-संवेदनशीलता, मानसिक स्वास्थ्य और शैक्षणिक उपलब्धि पर पड़ता है।

योग एक ऐसा प्राचीन भारतीय अनुशासन है जो शरीर, मन और चेतना को संतुलित करता है। आधुनिक शोध और न्यूरोसाइंस यह सिद्ध करते हैं कि योग अभ्यास—विशेषकर प्राणायाम, ध्यान और योग निद्रा—मस्तिष्क में न्यूरोनल गतिविधियों को संतुलित करते हैं, प्री-फ्रंटल कॉर्टेक्स की कार्यक्षमता बढ़ाते हैं, तथा तनाव हार्मोन (कॉर्टिसोल) के स्तर को घटाते हैं। परिणामस्वरूप विद्यार्थियों की संज्ञानात्मक क्षमता, भावनात्मक बुद्धिमत्ता, निर्णय लेने की क्षमता और स्मरण शक्ति में उल्लेखनीय सुधार होता है।

लड़कों और लड़कियों दोनों में शैक्षणिक उपलब्धि के पैटर्न अक्सर भिन्न पाए जाते हैं। भावनात्मक प्रतिक्रिया, मानसिक तनाव का स्तर, सामाजिक दबाव और अध्ययन व्यवहार में अंतर के कारण योग का प्रभाव भी दोनों समूहों पर भिन्न हो सकता है। इसलिए इस अध्ययन का विशिष्ट उद्देश्य यह जानना था कि योग आधारित शारीरिक एवं मानसिक प्रशिक्षण लड़कों और लड़कियों की शैक्षणिक उपलब्धि में किस प्रकार अंतर उत्पन्न करता है।

* शोध छात्र, शारीरिक शिक्षा विभाग, स्नातकोत्तर महाविद्यालय, मलिकपुरा, गाजीपुर सम्बद्ध वीर बहादुर सिंह पूर्वांचल विश्वविद्यालय, जौनपुर

** प्रोफेसर, शारीरिक शिक्षा विभाग, स्नातकोत्तर महाविद्यालय, मलिकपुरा, गाजीपुर सम्बद्ध वीर बहादुर सिंह पूर्वांचल विश्वविद्यालय, जौनपुर

20 योग आधारित शारीरिक एवं मानसिक प्रशिक्षण का लड़कों और लड़कियों की शैक्षणिक उपलब्धि...

यह अध्ययन न केवल शैक्षणिक उपलब्धि पर योग के प्रभाव का मूल्यांकन करता है, बल्कि यह भी समझने का प्रयास करता है कि योग किस प्रकार विद्यार्थियों के मानसिक स्वास्थ्य, तनाव नियंत्रण, विचार स्थिरता और अध्ययन उत्पादकता में सहायता करता है।

विधि एवं सामग्री (Methods and Materials)

अध्ययन में सर्वेक्षण तथा प्रायोगिक विधि का सम्मिलित उपयोग किया गया।

उपयोग की गई सामग्री

- योग मैट
- ध्यान एवं प्राणायाम के लिए शांत वातावरण
- 60-दिवसीय योग प्रशिक्षण कार्यक्रम
- स्वनिर्मित शैक्षणिक उपलब्धि परीक्षण
- सांख्यिकीय विश्लेषण सॉफ्टवेयर (Excel/SPSS)

नमूना (Sample)

कुल 200 विद्यार्थी

- लड़के: 100
- लड़कियाँ: 100

आयु सीमा: 18-22 वर्ष

चयन विधि: यादृच्छिक नमूना चयन (Random Sampling)

प्रक्रिया (Procedure)

योग प्रशिक्षण कार्यक्रम (60 दिन)

- अवधि: 40 मिनट प्रतिदिन
- घटक:
 - वार्म अप
 - ताड़ासन, त्रिकोणासन, भुजंगासन, धनुरासन
 - अनुलोम-विलोम, कपालभाति
 - ध्यान
 - योग निद्रा

डेटा संकलन

- प्रारंभ में प्री-टेस्ट
- 60 दिनों बाद पोस्ट-टेस्ट

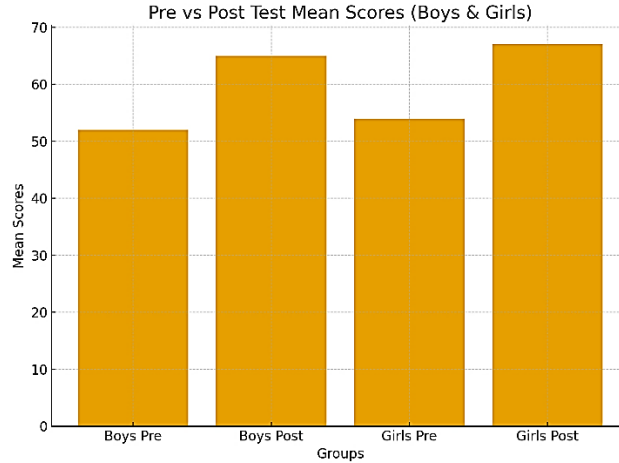
सांख्यिकीय विश्लेषण (Statistical Analysis)

- माध्य
- मानक विचलन
- t-परीक्षण (Paired Sample t-test)
- सार्थकता स्तर: 0.05, 0.01

परिणाम (Results)

तालिका 1: लड़कों और लड़कियों के प्री-पोस्ट शैक्षणिक उपलब्धि अंक

समूह	N	प्री-टेस्ट माध्य	पोस्ट-टेस्ट माध्य	t-मूल्य	p-मूल्य
लड़के	100	52.00	65.00	-10.82	0.000
लड़कियाँ	100	54.00	67.00	-12.31	0.000



परिणाम व्याख्या (Result Interpretation)

डेटा विश्लेषण से पता चला कि 60-दिवसीय योग प्रशिक्षण कार्यक्रम के बाद लड़कों और लड़कियों दोनों के शैक्षणिक उपलब्धि स्कोर में उल्लेखनीय वृद्धि हुई। लड़कों का प्री-टेस्ट माध्य 52.00 से बढ़कर पोस्ट-टेस्ट में 65.00 हो गया, जबकि लड़कियों का प्री-टेस्ट माध्य 54.00 से बढ़कर 67.00 हुआ। यह अंतर न केवल संख्यात्मक रूप से महत्वपूर्ण था, बल्कि t-परीक्षण के अनुसार सांख्यिकीय रूप से अत्यंत सार्थक ($p = 0.000$) पाया गया।

परिणाम दर्शाते हैं कि योग अभ्यास के बाद विद्यार्थियों की एकाग्रता, स्मरण शक्ति, अध्ययन दक्षता और मानसिक स्पष्टता में पर्याप्त सुधार हुआ। लड़कियों में सुधार की दर लड़कों की तुलना में थोड़ी अधिक रही, जो यह संकेत करती है कि वे ध्यान और प्राणायाम जैसे मानसिक अभ्यासों के प्रति अधिक ग्रहणशील हो सकती हैं। इसके अतिरिक्त, प्रशिक्षण के दौरान लड़कों ने अपनी कार्यशील स्मृति और तनाव नियंत्रण क्षमताओं में उल्लेखनीय वृद्धि प्रदर्शित की।

उपरोक्त ग्राफ (जो पहले से जनरेट है) दृश्य रूप से इस परिवर्तन को दर्शाता है और स्पष्ट करता है कि योग प्रशिक्षण के परिणामस्वरूप दोनों समूहों में अकादमिक प्रदर्शन में ठोस वृद्धि हुई।

चर्चा (Discussion)

अध्ययन की चर्चा यह संकेत करती है कि योग आधारित प्रशिक्षण विद्यार्थियों के मानसिक, भावनात्मक और शारीरिक स्वास्थ्य को कई स्तरों पर मजबूत करता है, जिसके प्रत्यक्ष प्रभाव उनकी शैक्षणिक उपलब्धि पर दिखाई देते हैं। योग एक समग्र अभ्यास है जिसमें शरीर, मन और भावनाओं के बीच सामंजस्य स्थापित किया जाता है। आसन शरीर की ऊर्जा प्रणाली को सक्रिय करते हैं, प्राणायाम श्वसन तंत्र को मजबूत करता है और मस्तिष्क में ऑक्सीजन स्तर बढ़ाता है, जबकि ध्यान और योग निद्रा मानसिक विकर्षण को खत्म कर गहन विश्राम की अवस्था प्रदान करते हैं।

इस अध्ययन में विद्यार्थियों ने अपने अध्ययन व्यवहार, अध्ययन में निरंतरता, आत्म-नियंत्रण, समय प्रबंधन और भावनात्मक विनियमन में सुधार की सूचना दी। मानसिक तनाव, परीक्षा चिंता और अस्थिरता जैसी समस्याओं में भी महत्वपूर्ण कमी देखी गई।

लड़कियों में सुधार का कारण संभवतः यह है कि वे भावनात्मक रूप से योग के प्रभाव को अधिक गहराई से अनुभव करती हैं और ध्यान व योग निद्रा अभ्यासों में अपेक्षाकृत अधिक नियमितता प्रदर्शित करती हैं। लड़कों ने भी उल्लेखनीय सुधार दिखाया, विशेषकर कार्यशील स्मृति, निर्णय क्षमता और फोकस में।

इस प्रकार अध्ययन यह सिद्ध करता है कि नियमित योग प्रशिक्षण विद्यार्थियों की शैक्षणिक क्षमता को केवल परीक्षा अंकों के स्तर पर बढ़ाता ही नहीं, बल्कि उनके संपूर्ण मानसिक स्वास्थ्य और व्यक्तित्व विकास को भी सशक्त करता है।

निष्कर्ष (Conclusion)

इस अध्ययन के विस्तृत विश्लेषण के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि योग आधारित शारीरिक एवं मानसिक प्रशिक्षण लड़कों और लड़कियों दोनों की शैक्षणिक उपलब्धि को महत्वपूर्ण रूप से बढ़ाता है। योग अभ्यास से विद्यार्थियों की एकाग्रता, स्मरण शक्ति, मानसिक शांति, तनाव नियंत्रण और अध्ययन प्रेरणा में वृद्धि होती है, जो सीधे-सीधे उनके शैक्षणिक प्रदर्शन को प्रभावित करती है।

60-दिवसीय प्रशिक्षण कार्यक्रम ने दोनों समूहों के प्री-पोस्ट स्कोर में अत्यधिक सार्थक अंतर उत्पन्न किया, जिससे यह सिद्ध होता है कि योग एक प्रभावी अकादमिक हस्तक्षेप है। लड़कियों में सुधार का स्तर थोड़ा अधिक पाया गया, जबकि लड़कों ने मानसिक स्थिरता और अध्ययन उत्पादकता में उत्कृष्ट प्रगति प्रदर्शित की।

22 योग आधारित शारीरिक एवं मानसिक प्रशिक्षण का लड़कों और लड़कियों की शैक्षणिक उपलब्धि...

इस अध्ययन का सबसे महत्वपूर्ण निष्कर्ष यह है कि योग को उच्च शिक्षा संस्थानों में न केवल स्वास्थ्य कार्यक्रम के रूप में, बल्कि शैक्षणिक दक्षता बढ़ाने वाले उपकरण के रूप में भी अनिवार्य रूप से शामिल किया जाना चाहिए। योग विद्यार्थियों के मानसिक स्वास्थ्य, संज्ञानात्मक विकास और समग्र शैक्षणिक सफलता के लिए अत्यंत मूल्यवान एवं वैज्ञानिक रूप से प्रमाणित अभ्यास है।

संदर्भ (References)

1. Balasubramanian, K. (2015). Yoga for academic enhancement among college students. *Journal of Education and Health Promotion*, 4(5), 1–7.
2. Bhat, S., & Katti, S. (2018). Effects of pranayama on cognitive performance. *International Journal of Yoga*, 11(2), 110–115.
3. Desai, R., & Joshi, A. (2019). Influence of yoga on concentration and memory. *Indian Journal of Psychology*, 54(3), 45–52.
4. Dunn, W. (1999). *Sensory Profile Manual*. Psychological Corporation.
5. Field, T. (2011). Yoga clinical research review. *Complementary Therapies in Clinical Practice*, 17(1), 1–8.
6. Gupta, S., & Sharma, M. (2020). Impact of yoga on student stress. *Journal of Indian Education*, 46(2), 24–35.
7. Khalsa, S. B. (2016). Yoga as a school-based intervention. *Journal of Evidence-Based Complementary Medicine*, 21(2), 52–66.
8. Kumar, A., & Rajput, H. (2017). Role of yoga in academic performance. *International Journal of Physical Education*, 7(1), 92–101.
9. NCERT. (2019). *Yoga: A holistic approach for students*.
10. Saraswati, S. (2010). *Yoga and Mental Health*. Bihar School of Yoga.
11. Sharma, R., & Singh, P. (2018). Influence of yogic practices on concentration. *International Journal of Yoga Therapy*, 28(3), 35–41.
12. Telles, S., & Raghavendra, B. (2012). Yoga for students. *Indian Journal of Physiology*, 56(2), 128–134.
13. WHO. (2014). *Mental health: Strengthening our response*. WHO Press.
14. Yadav, R., & Pal, S. (2021). Mindfulness yoga and scholastic achievement. *Journal of Positive School Psychology*, 5(1), 88–97.
15. Yoga Sciences Council of India. (2020). *Yoga Education Guidelines*. Government of India.



अगिआंव प्रखंड जिला भोजपुर में विधवाओं की सामाजिक आर्थिक दशा का भौगोलिक अध्ययन

निरंजन कुमार भारती*

सारांश:

प्राचीन काल में महिलाओं की सामाजिक आर्थिक स्थिति अच्छी थी कहा जाता था कि महिलाओं की जहां पूजा जाती वहीं देवता वास करते थे। लेकिन मध्य एवं आधुनिक काल में इसकी दशा में क्रमिक हास हुआ। आज शिक्षा, स्वास्थ्य तथा वैज्ञानिक विकास के बावजूद उनकी स्थिति में आशातीत सुधार नहीं हो सका है। सामान्य रूप से दलित, वंचित तथा पिछले समाज में महिलाओं के साथ-साथ विधवाओं की स्थिति अत्यधिक चिंताजनक है। शोध का उद्देश्य समाज में विद्यमान विधवाओं के प्रति उपेक्षाओं तथा मनोवैज्ञानिक सोच का अध्ययन करना है। प्रस्तुत शोध भोजपुर जिला के अगिआंव प्रखंड संबंधित है जो 25°22'39"N - 84°36'33"E के बीच अवस्थित है। इसमें 15 ग्राम पंचायत है तथा लगभग 72 गांव तथा 66 राजस्व गांव हैं जिनमें उनकी संख्या 146 है। प्रस्तुत शोध प्राथमिक एवं द्वितीय आंकड़े पर आधारित होगा जब तक विधवाओं की समस्या का समाधान नहीं होगा एक उन्नत तथा विकसित समाज की परिकल्पना नहीं की जा सकती है।

कूटशब्द - स्वास्थ्य, वैज्ञानिक विकास, मनोवैज्ञानिक, दलित, विधवा

परिचय:

मौर्या काल से ही उच्च और नीच जाति वर्ग की महिलाओं के लिए विधवापन के अनुभव में अंतर के प्रमाण मिलते हैं। अर्थशास्त्र में हमें बताता है कि शाही बनाई और कटाई प्रतिष्ठा के कर्मचारी गरीब महिलाओं से बने थे जिनमें विधवाएं अपंग अनाथ भिखारी महिलाएं जुमाना न चुकाने वाली महिलाओं होती थीं।

सती विधवा पुनर्विवाह और सहमति की आयु के इर्द-गिर्द 19वीं सदी के कानूनी सुधारवादी वाद विवाद ऐसे टेम्पलेट थे जिन पर हिंदू महिलाएं शरीर पर गहरी चिंताएं व्यक्त की गईं। विधवा पूर्ण विवाह शरीर को प्रजनन और मातृत्व के क्षेत्र में वापस लाने का एक तरीका था।

जो महिला विधवा हो जाती थी वह मजदूरी में काम करने वाली महिलाओं में से कहा जाए तो हम लोग टूटी फूटी भाषा में वैश्या भी कहते हैं। ये सभी निम्न वर्ग की और पुरुष पूर्वक्षकों की अधीन काम करती थी। कभी-कभी उच्च वर्ग की महिलाएं बुरे दिनों में पड़ जात है उसे इसी तरह से जीकोपार्जन करने के लिए मजबूर होना पड़ता है। हालांकि उसकी देखभाल एक अलग तरीके से की जाती थी अगर वह को अभी भी नौकरानी को काम पर रख सकती थी

विधवापन के अनुभव में अंतर इस तथ्य पर भी आधारित है कि उच्च निम्न जाति के रीति रिवाज और संस्कृत संहिताओं ने महिलाओं के लिए एक प्रतिकूल लैंगिक समीकरण तैयार किया है सबसे पहले 1881 की जनगणना के अनुसार पाया गया कि कम उम्र में शादी प्रथा बड़े पैमाने पर प्रचलित थी, विशेष कर ब्राह्मण जाति के हवाले से कुछ भी शादी 7 साल से पहले हो जाती है और लगभग सभी की शादी 10 साल से पहले हो जाती है इसे स्वाभाविक रूप से विधवाओं का प्रतिशत अधिक होगा लगभग एक तिहाई ब्राह्मण महिलाएं विधवा थी हर जाति में लगभग 50% से अधिक महिला विधायक थी

शोधक्षेत्र: प्रस्तावित शोध क्षेत्र भोजपुर जिला के अंतर्गत एक विकासखंड है इसका क्षेत्रफल 57 किलोमीटर है और अवस्थित 25°22'39" N - 84°36'33" E है

अगिआंव प्रखंड का गठन 01.12.1995 तथा कुल ग्रामों की संख्या 72 एवं चिरागी ग्रामों की संख्या 66 एवं बीच चिरागी गांव की संख्या 06 है यहां की कुल मांग प्रति वर्ष 12856.08 है तथा कुल ग्रामों की रचना 39879.13 है आज्ञाओं प्रखंड में कृषि योग्य भूमि की रकबा 26954.57 तथा गैर कृषि योग्य भूमि का रकबा 12924.56 है यह मुख्य नेहरो की संख्या एक राजस्व नहरों की संख्या एक समांतर नहर एक चोरी बांध अगिआंव में सरकारी नलकूप की संख्या एक भी नहीं है। अगिआंव प्रखंड में सिंचित भूमि का रकबा 8810 हेक्टेयर है

शोध का उद्देश्य:

शोध का मुख्य उद्देश्य अभियान प्रखंड में रहने वाली वीडियो की सामाजिक आर्थिक स्थिति का सुधार है

1. विधवाओं की वर्तमान समय में उनकी समस्या कि समाज की स्थानीय निकाय के जनप्रतिनिधि तथा नीति निर्देशक को सही अवगत कराना है
2. विधवाओं के लिए विशेष प्रधान की व्यवस्था की जाए
3. विधवाओं की देखभाल के लिए हर प्रखंड में विद्यावा आश्रम की व्यवस्था की जाए

* व्याख्याता, जे. डी. एस. डिग्री कॉलेज डीलिया, तरारी, भोजपुर (बिहार)

4. सरकार द्वारा विधवाओं का पेंशन लगभग उनकी स्थिति के देखते हुए विधवा पेंशन में वृद्धि की जाए
5. विधवाओं के लिए ग्राम पंचायत एवं जिला परिषद एवं चुनाव में उनके एक विशेष प्रदान किया जाए जिससे वह अपने विधवाओं की आवाज सदन तक पहुंच सके
6. विधवाओं को मुख्य धारा से अलग नहीं किया जाए
7. विधवाओं की मुख्य धारा से जोड़ा जाए उनको विशेष ग्रहण के माध्यम से उनकी देख हर एक की जाए

शोध विधि तंत्र: विधवाओं को सामाजिक आर्थिक स्थिति की जानकारी दो तरीकों से एकत्रित किया गया है पहले है प्राथमिक आंकड़ा प्राथमिक आंकड़ा वह होता है जहां रहने वाली विधवाओं के द्वारा लिया गया तथा द्वितीय आंकड़े शोध पुस्तकों पत्र पत्रिकाओं दैनिक समाचार पत्रों द्वारा लिया गया आंकड़ा होता है

विधवाओं की समस्याएं :

विधवा महिलाओं को भारतीय समाज में कई समस्याओं का सामना करना पड़ता है जिनमें सामाजिक, आर्थिक और मानसिक स्वास्थ्य से संबंधित चुनौतियां शामिल हैं। इन्हें अक्सर भेदभाव अलगाव और गरीबी का सामना करना पड़ता है

सामाजिक समस्याएं :

विधवा का सामाजिक कलंक है अक्सर विधवाओं के अशुभ माना जाता है और उन्हें धार्मिक अनुष्ठानों और सामाजिक समारोह में शामिल होने से रोका जाता है

भेदभाव :

विधवाओं के साथ भेदभाव किया जाता है और उन्हें कई अधिकारों से वंचित रखा जाता है। विधवाओं को समाज से अलग कर दिया जाता है और उन्हें अकेलापन महसूस होता है

यौन शोषण:

कुछ मामले में विधवा को यौन शोषण का शिकार भी होना पड़ता है

आर्थिक समस्याएं :

गरीब :

विधवाओं को अक्सर गरीबी और आर्थिक तंगी का सामना करना पड़ता है खासकर अगर उनके पास कोई आय का स्रोत नहीं है तथा कई विधवाओं को रहने के लिए सुरक्षित स्थान नहीं मिलता है विधवा को अक्सर सरकार या अन्य स्रोतों से पर्याप्त आर्थिक सहायता नहीं मिलती है

मानसिक स्वास्थ्य समस्या:

शोक- विधवाओं को अपने पति को खोने के गम से उभरने में मुश्किल होती है विधवा को अक्सर अकेलापन और अलगाव महसूस होता है जिससे वह अवसाद और चिंता से पीड़ित हो सकती है विधवाओं को अपने जीवन में आने वाली चुनौतियों का सामना करने के लिए बहुत तनाव का अनुभव होता है

विधवाओं के समस्या का समाधान : विधवाओं की समस्या का समाधान करने के लिए सरकार और गैस सरकारी संगठन एनजीओ द्वारा कई योजनाओं और पहले चलाई जा रही है इनमें मुख्य रूप से विधवा

पेंशन योजना, विधवा पूर्ण विवाह प्रोत्साहन योजना , और विधवा कल्याण कार्य क्रम शामिल है इसकी अतिरिक्त सामाजिक जागरूकता और कानूनी सहायता भी महत्वपूर्ण है

वित्तीय सहायता:

- विधवा पेंशन योजना यह योजना विधवा महिलाओं के आर्थिक सहायता प्रदान करती है जिससे वह अपनी बुनियादी जरूरत को पूरा कर सके ।
- विधवा पूर्ण विवाह प्रोत्साहन योजना यह योजना विधवा महिलाओं को पूर्ण विवाह को प्रोत्साहित करती है और वित्तीय सहायता प्रदान करती है जिससे उन्हें सामान्य जीवन जीने को मदद मिलती है
- सामाजिक जागरूकता विधवाओं के प्रति सामाजिक दृष्टिकोण में बदलाव लाने के लिए जागरूकता अभियान चलाना आवश्यक है
- कानूनी सहायता विधवा को उनके अधिकारों के बारे में जागरूक करना और कानूनी सहायता प्रदान करना महत्वपूर्ण है
- विधवा कल्याण कार्यक्रम योजना के लंबों तक पहुंचने में सक्षम बनने के लिए उचित पहचान पत्र प्रदान किया जाना चाहिए
- विधवाओं को सुबह रोजगार और उधमाशीलता गतिविधियों के लिए स्वयं सहायता समूह के निर्माण को प्रोत्साहित किया जाना चाहिए

निष्कर्ष: विधवा महिलाओं को उन्हें सामाजिक, आर्थिक और कानूनी रूप से सशक्त बनाने की आवश्यकता है। इसमें विधवाओं को विरासत, भूमि, पेंशन और अन्य सामाजिक सुरक्षा तक पहुंचाने में सुधार किया जाए भेदभाव पूर्ण कानूनों और

पितृतात्मक व्यवस्था को समाप्त करना इसमें शामिल है। इसके अतिरिक्त विधवा पूर्ण विवाह को प्रोत्साहित करना और विधवाओं को शिक्षा और व्यवसायिक प्रशिक्षण प्रदान करना महत्वपूर्ण होगा।

संदर्भ:

1. प्रोफेसर अजन घरात, नागार्जुन के नारी पत्र 1989 शब्द शक्ति प्रकाशन कानपुर
2. आशारानी बहोरा: भारतीय नारी दिशा 1983 नेशनल पब्लिकेशन हाउस दिल्ली
3. डॉ उषा यादव: हिंदी महिला उपन्यासकारों में मानवीय संदेवन प्र.स.1989 राधाकृष्णन प्रकाश दिल्ली
4. डॉ. एस. वी. महाजन: आधुनिक हिंदी कहानी साहित्य में कामूलक संवेदना 1986 चिता प्रकाशन कानपुर
5. डॉ. त्रिभुवन सिंह: अथायेवाद 2012 हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय बनारस
6. श्री धर्मपाल: नारी एक विवेचन प्र.स.1996 भावना प्रकाशन दिल्ली
7. श्री प्रेमचंद: कुछ विचार 1982 सरस्वती प्रेस इलाहाबाद
8. डॉ. महेंद्र भटनागर: समस्या मूलक उपन्यासकार प्रेमचंद 1982 ज्ञान भारती दिल्ली
9. डॉ. रमेश देशमुख: जीवन मुल्क प्र.स.1994 विद्या प्रकाशन कानपुर
10. डॉ.राजकुमारी गडकर: नारी चिंतन 2006 अन्नपूर्णा प्रकाशन कानपुर
11. डॉ. राजरानी शर्मा: मुक्त नारी प्र. स.1989 नचिकेत प्रकाशन दिल्ली



काशी की वैदिक पाण्डित्य परंपरा और यूरोप का दार्शनिक विमर्श

शिखर श्रीवास्तव*
प्रो. प्रवेश भारद्वाज**

सारांश :-

वाराणसी ने भारत के सांस्कृतिक धरोहर के रूप में भारतवर्ष में ख्याति प्राप्त की है। लेकिन यह तथ्य पूर्ण प्रकाश में नहीं आया है की वाराणसी का प्रभाव यूरोप के प्रबोधन काल के दार्शनिक विमर्श में भी है। प्रस्तुत शोधपत्र यह स्थापित करने का प्रयास है की सत्रहवीं शताब्दी ईस्वी में यूरोप में परिपक्व हुए पुनर्जागरण के स्वर जान के जिस तार से झंकृत हुए उसका एक सिरा काशी की भूमि से जुड़ा था। किन्तु बाद में घटनाओं का क्रम ऐसे बदला की यही काशी की भूमि वेदों के भ्रमित कर देने वाले अर्थ दिखाने लगी। यहीं पर ब्रिटिश मूल के भारतविद्, वेदों का अंग्रेजी रूपांतरण कर रहे थे और यह रूपांतरण अनेक भ्रामक पाठ का कारण बन गया। यह भ्रामक पाठ यूरोप में उपजे आर्य नस्ल के सिद्धांत के पोषण और संवर्धन का कारण बनें और इसने यूरोपीय दर्शन पर पुनः वैसा ही प्रभाव डाला जैसा प्रबोधन काल में डाला था।

आरंभिक यूरोपीय यात्री और वैदिक ज्ञान की खोज :-

एक आम धारणा के अनुसार भारतीय धर्म दर्शन का अध्ययन ब्रिटिश अधिकारियों द्वारा भारत भूमि पर शासन चलाने की सुलभता को ध्यान में रखकर आरम्भ किया गया था। किंतु वास्तविकता यह है कि भारतीय दर्शन में यूरोपीय देश एक समृद्ध ज्ञान की खोज कर रहे थे जो उन्हें अधिक परिष्कृत एकेश्वरवाद का ज्ञान दे सकती थी।¹ 16वीं शताब्दी के प्रारंभ में जब पुर्तगाली भारत के गोवा प्रांत में हिंदुओं के रिलिजियस कन्वर्जन के लिए अथक प्रयास कर रहे थे, उनकी प्रेरणा का मुख्य स्रोत भारत में बहु-ईश्वरवाद तथा मूर्ति-पूजा को समाप्त करने की भावना थी। इस कार्य के लिए अमानवीय अत्याचार को माध्यम बनाया गया।² इसके विस्तृत उल्लेख की यहाँ आवश्यकता नहीं है किन्तु इसकी जानकारी के लिए अनेक ऐतिहासिक शोध उपलब्ध हैं।³ किन्तु इन पैशाचिक अत्याचार के बाद भी हिन्दुओं द्वारा ईसाई पंत न अपनाए जाने पर क्रिश्चियन मिशनरियों ने समझौतावादी नीति का अनुसरण आरंभ किया तथा भारतीय धर्म शास्त्रों का अध्ययन शुरू किया जिससे ब्राह्मणों को पराजित करके भारत में (उनके दृष्टिकोण के अनुसार) अंतिम सत्य के रूप में स्थापित ईसाई मत का प्रचार प्रसार किया जा सके। विशेष रूप से सेंट जेवियर्स ने यह प्रयास शुरू किया। किंतु जब उनका सामना वैदिक दर्शन से हुआ तो अपने तमाम पूर्वाग्रह के बाद भी उन्हें यह स्वीकार करना पड़ा की भारतीय ब्राह्मण एकेश्वरवाद के उच्चतर सैद्धांतिक ज्ञान से अभिन्न हैं तथा उसे जानबूझकर छुपा कर रखते हैं।⁴ सेंट जेवियर्स के दृष्टिकोण से प्रभावित परवर्ती मिशनरीयों में, जिनमें केवल पुर्तगाली ही सम्मिलित नहीं थे, भारतीय दर्शन को जानने की तथा उसे ईसाई मत के अनुरूप ढालने की ललक उत्पन्न हो गई। यद्यपि वह भारतीय धर्म परंपरा को इसी मान्यता के अनुरूप गढ़ने में तो सफल नहीं हुए किंतु ईसाई मत भारतीय परंपरा के अनुरूप बदलने लगा जिसका प्रत्यक्ष उदाहरण जेसुइट थॉमस स्टीफन के 'क्राइस्ट-पुराण' के रूप में देखने को मिलता है।⁵

1580 तक यूरोप में यह बात फैल गई थी कि भारतीय ब्राह्मण वेदों के रूप में गंभीर एकेश्वरवादी दर्शन के ज्ञान को छुपा कर रखते हैं। यह उत्सुकता विद्वानों के बीच खोजी अभियान के रूप में सामने आई। इस दौरान Giacomo Fenicio⁶, Roberto Nobili⁷ जैसे यूरोपीय खोजकर्ता ब्रह्म के ज्ञान की ब्राह्मणों से जानकारी ले रहे थे। आधी सदी पहले जेवियर द्वारा बताए गए ग्रंथों तक आखिरकार पहुँच प्राप्त करने के बाद, नोबिली ने पाया कि जबकि उन

* अतिथि प्रवक्ता, महाराजा सुहेलदेव विश्वविद्यालय, आजमगढ़; शोधछात्र, इतिहास विभाग, सामाजिक विज्ञान संकाय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय

** प्रोफेसर, इतिहास विभाग, सामाजिक विज्ञान संकाय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय

ग्रंथों में से कुछ भाग वास्तव में "सच्चे और निरपेक्ष अर्थ में ईश्वर" (ब्रह्म) का उल्लेख करते थे - और यहाँ तक कि उनमें "परम पवित्र त्रिदेव के गूढ़ रहस्य का एक आभास" भी था. अन्य भागों में झूठे देवताओं से संबंधित अंधविश्वासी अनुष्ठानों का वर्णन किया गया था, जिससे "उनमें दर्ज बातें एक दूसरे के साथ विरोधाभासी हैं।⁸ अर्थात् नोबिली को जो ग्रन्थ मिले, उनके अध्ययन पर उसने भारत के एकेश्वरवाद के पक्ष को समझा और त्रिदेव की गूढ़ व्याख्या समझने का प्रयास किया. यद्यपि उसके अनुसार यह ग्रन्थ विरोधाभासी अर्थ उत्पन्न करते हैं.

Roberto Nobili के लेखन कार्य के छपने से पूर्व ही Giacomo Fenicio का हिन्दू धर्म पर शोध यूरोप में प्रसिद्ध हो गया था, हालांकि यह आज उपलब्ध नहीं है और हम Giacomo Fenicio के दृष्टिकोण की जानकारी नहीं प्राप्त कर सकते लेकिन इतना अवश्य है की इस इतालवी जेसुइट ने समकालीन ईसाई खोजकर्ताओं को अवश्य प्रभावित किया तथा कई यूरोपीय यात्री विशेष रूप से वैदिक दर्शन की खोज में भारत आने लगे. यहाँ सभी का नाम लिखने की आवश्यकता नहीं केवल इतना रेखांकित करना पर्याप्त है की इस परिपेक्ष्य में शोधकार्य सीमित हैं तथा यूरोप या कहे ईसाई जगत के साथ भारतीय ज्ञान परंपरा के मिलन के लिए पर्याप्त अवसर उत्पन्न करता है. यथा इन जेसुइट पादरियों ने हिन्दू धर्म को लेकर क्या दृष्टिकोण बनाया और यह दृष्टिकोण कालांतर में आए ईसाई मिशन से कितना अलग था. महत्वपूर्ण तथ्य यह है की प्रारंभिक जेसुइट पादरी वैदिक दर्शन को ज्ञान का एक स्रोत मानते थे. यह सोच बाद में बदल गई तथा अठारहवीं शती के अंत में भारतीय धर्म ग्रंथों पर शोध कर रहे अंग्रेज प्राच्यवादी वैदिक ग्रन्थ में एकल आर्य सिद्धांत की खोज करने लगे.

जब भारत पर औपनिवेशिक नियंत्रण बढ़ा तो हिन्दू धर्म को देखने का दृष्टिकोण भी बदलने लगा. आगे हम देखेंगे की इस बदलाव का कारण क्या था, किन्तु यहाँ यह बता देना उचित है की उन्नीसवीं शती के अंत तक ईसाई मिशनरियों के लिए हिन्दू धर्म दकियानुसी आडंबर और मूर्खतापूर्ण विचारों का संग्रह बन गया था और वैदिक दर्शन, जो कभी एकेश्वरवाद के गंभीर विचारों का संग्रह था, प्रकृति की शक्तियों के प्रति सतही श्रद्धा का समुच्चय बनकर रह गया.⁹

वाराणसी और वैदिक ज्ञान की खोज :-

इस पूरे दृष्टिकोण के बदलाव की कहानी वाराणसी से जुड़ी है. सोलहवीं शती के प्रारम्भ में आने वाले जेसुइट पादरियों का पदार्पण दक्षिण भारत में होता था. इनमें से अधिकांश ने हिन्दू धर्म को लेकर जो दृष्टिकोण बनाया वह हिन्दू मान्यताओं पर लिखे जा रहे स्थानीय साहित्य से उपजा था. यह काल भारत के दार्शनिक इतिहास का भक्तिकाल का दौर था. उत्तर की ही तरह दक्षिण में अधिकांश साहित्य का आधार वेद न होकर पुराण थे. यद्यपि अपने स्वरूप में पुराण भी एकल परमसत्ता के उपासक हैं किन्तु इसे अलग अलग कहानियों में अभिव्यक्त करते हैं. Nobili के अतिरिक्त अधिकांश पादरियों ने हिन्दू दर्शन के गंभीर अध्ययन के स्थान पर रीतियों और मान्यताओं, सामाजिक ढांचे आदि पर लेखन कार्य किया.¹⁰ इस समस्या का कारण भाषाई कठिनाई थी. उच्च दार्शनिक सिद्धांतों का प्रतिपादन करने वाले ग्रन्थ जैसे वैदिक संहिता, उपनिषद, ब्रम्हसूत्र आदि संस्कृत भाषा में प्राप्त होते थे तथा संस्कृत का ज्ञान सीमित था.¹ एक ओर यूरोपीय जेसुइट इस ज्ञान को किसी भी हाल में खोज निकालना चाहते थे दूसरी ओर ब्राह्मणों ने वेद अध्ययन के अधिकार इतनी सीमित कर रखे थे कि भारतीय समाज में ही अन्य वर्गों को इससे वंचित रखा गया था तो म्लेच्छ ईसाईयों को वेद अध्ययन की अनुमति दी ही नहीं जा सकती थी.¹¹ यह कठिनाई तब समाप्त हुई जब मुगल शाहजादा दाराशिकोह वाराणसी आया और उसने न केवल वैदिक दर्शन का अध्ययन किया, उसका फ़ारसी भाषा में रूपान्तरण किया. इस प्रकार

¹ भक्तिकाल के दौरान स्थानीय भाषा में लिखे गए साहित्य भी यद्यपि उसी दार्शनिक परम्परा से आते हैं जिनसे उपनिषद आदि आते हैं तथा वे इस रूप में अनुठे हैं की उन्होंने उपनिषदादि ग्रंथों के गूढ़ दार्शनिक भावों को सरलतम रूप में व्याख्यायित किया है. तथापि इस गूढ़ दार्शनिक अर्थ को समझने के लिए गुरु शिष्य परंपरा में दीक्षित होना आवश्यक है और इन जेसुइट पादरियोंसे यह अपेक्षा नहीं की जा सकती थी की वे संत परम्परा अपनाएंगे.

‘सिर ए अकबर’ के रूप में ईसाईयों को एक ऐसा ग्रन्थ मिला जिसे वह आसानी से समझ सकते थे. क्योंकि हिन्दू मान्यताओं के तुलना में उन्हें इस्लामिक मान्यताओं की समझ अधिक थी तथा फ़ारसी से उनका सरोकार संस्कृत की अपेक्षा अधिक था. साथ ही मुगल दरबार में इन मिशनरीयों का आवागमन भी सुलभ था. महत्वपूर्ण यह है की दाराशिकोह की पुस्तक हिन्दू दर्शन के एकेश्वरवादी स्वरूप को भली प्रकार प्रकाश में लाती है. हालांकि इस ग्रन्थ ने तात्कालिक दार्शनिक इतिहास, हिन्दू मुस्लिम सांस्कृतिक इतिहास पर क्या प्रभाव डाला, मुगल दरबार में आने वाले ईसाईयों पर इसका क्या प्रभाव हुआ तथा इस ग्रन्थ का क्या भविष्य हुआ यह इतिहास का एक ऐसा पहलू है इस पर भावी शोधकार्य की बहुत संभावना है. सम्भवतः दारा के पतन के साथ ही इस ग्रन्थ का पतन हो गया हो किन्तु यह विचारणीय है की क्या कोई ग्रन्थ उसके लेखक के मिट जाने से अपनी प्रासंगिकता खो सकता है? विशेषरूप से तब जब यह ग्रन्थ न केवल हिन्दू मुस्लिम संस्कृति के लिए बल्कि हिन्दू और अब्राहमिक संस्कृति के लिए समन्वय का सेतु बन सकता था. अब क्योंकि ग्रंथ के रचनाकार दाराशिकोह ने हिन्दू दर्शन कि शिक्षा वाराणसी में प्राप्त कि तथा उनके विचार वाराणसी कि पांडित्य परंपरा से प्रभावित थे इसलिए दारा के प्रभाव का श्रेय उसके व्यक्तित्व के साथ ही काशी की पांडित्य परंपरा को भी जाता है.

दारा शिकोह की पराजय के बाद भारतीय ज्ञान परंपरा का कोई राजकीय प्रतिनिधित्व पश्चिम के समक्ष नहीं आया. 17वीं शताब्दी के अंत तक यूरोप में वेदों को लेकर उत्सुकता बनी रही थी किंतु कोई विशेष अध्ययन सामग्री उपलब्ध नहीं हो सकी. 1720 के दशक तक यूरोप के विद्वानों ने वेदों के अनुवाद की मांग शुरू कर दी थी ताकि इस गुप्त सिद्धांत को उजागर किया जा सके और पेरिस के शाही पुस्तकालय से वेदों के पाठों की खोज शुरू की गई. इस प्रकार पहली बार विशेषरूप से वेद अध्ययन और रूपांतरण के लिए खोजी अभियान निकले.¹² 1760 में, लुई-लॉरेंट डी फेडरबे², जो फ्रेंच आर्मी से जुड़े थे, ने फ्रांसीसी दार्शनिक वोल्टेयर को एजोरवेदम³ नामक एक पुस्तक की एक पांडुलिपि भेंट की। पांडुलिपि फ्रेंच में थी, कथित तौर पर संस्कृत के मूल ग्रन्थ से एक विद्वान ब्राह्मण द्वारा किया गया अनुवाद थी. इस ग्रन्थ को पढ़कर वोल्टेयर ने निष्कर्ष निकाला था कि यह ग्रन्थ सिकंदर के भारत में आक्रमण से पहले के समय से जुड़ा हुआ है। वोल्टेयर इस कार्य से तुरंत मोहित हो गए। इस ग्रंथ ने अन्य बातों के अलावा, उसके इस विचार की पुष्टि की, कि ईसाई ग्रंथों में उपस्थित कई दार्शनिक विचार एवं उपदेश ईसाई धर्म के लिए बिल्कुल भी अनन्य नहीं थे, अर्थात् ये विचार अन्य ईसाई-पूर्व धर्मों में भी मौजूद थे।¹³ महत्वपूर्ण बात है की इस ग्रन्थ की पहचान यजुर्वेद से की जाती थी और वोल्टेयर का यह निष्कर्ष, की यह ग्रन्थ सिकंदर के काल से पुराना है, इस दृष्टि से अधिक अचंभित करता है की इस समय तक पश्चिमी विद्वानों द्वारा वेदों का काल निर्धारण नहीं किया गया था और न ही तुलनात्मक भाषाशास्त्रीय अध्ययन आरम्भ भी नहीं हुआ था. यह ग्रन्थ यजुर्वेद न भी हो तो भी वोल्टेयर के निष्कर्ष से यह बात निर्विवाद बन जाती है की ईसाई मान्यता के विचार, उसकी मूल खोज न होकर, हिन्दू दर्शन से प्राप्त किए गए हैं. यह विचार यूरोप में दृढ़ हो रहा था.

इस समय पेरिस में भारतीय दर्शन और ज्ञान की धूम मची थी. भारतविदों में एक नाम पेरिस के पहले मेयर खगोलशास्त्री बेली का भी था जो भारतीय ज्ञान को लोकप्रिय बनाने में बहुत प्रभावशाली ढंग से लगे थे। 1777 में उन्होंने यह विचार दिया की मनुष्य सबसे पहले गंगा के तट पर आए थे. इस प्रकार सभ्यता के विकास की ईसाई केंद्रित धारणा का उन्होंने खंडन किया. जोन्स की घोषणा से पहले ही, बेली ने कहा कि “ब्राम्हण पाइथागोरस के शिक्षक हैं, ग्रीस के प्रशिक्षक हैं और उसके माध्यम से पूरे यूरोप के गुरु हैं।” वोल्टेयर ने

² Louis Laurent de Féderbe

³ Ezourvedam

इसपर अपनी सहमति व्यक्त करते हुए लिखा "संक्षेप में, सर, मुझे विश्वास है कि सब कुछ - खगोल विज्ञान, ज्योतिष, मेटामसाइकोसिस, आदि - गंगा के तट से हमारे पास आता है"¹⁴

वोल्टेयर जैसे विद्वानों द्वारा वेदों की प्रशंसा ने अंग्रेज प्राच्यवादियों के प्रयासों में ईंधन का कार्य किया। इस वैचारिक वातावरण में जोन्स जैसे विद्वान् तुलनात्मक भाषाशास्त्र का अध्ययन करते हैं तथा यह स्थापित करने का प्रयास करते हैं की यूरोप के ईसाई और वैदिक आर्य एक ही परिवार का हिस्सा हैं तथा वेदों में जिन सिद्धांतों का दर्शन होता है वह ईसाई जगत से अलग नहीं हैं। निश्चित रूप से भाषाशास्त्रीय अध्ययन और प्राच्यवादी अध्ययन के पीछे एक महत्वपूर्ण कारण, भारतीय जनमानस को समझने का प्रयास था, जिससे उनपर शासन चलाने में सुलभता प्राप्त हो, किन्तु इन प्रयासों का एक सिरा यूरोप में चल रहे दार्शनिक द्वन्द से भी जुड़ा है।

हालांकि बहुचर्चित ग्रन्थ एजोरवेदम का अंग्रेजी या हिंदी रूपान्तरण उपलब्ध नहीं है इसलिए इसके प्रभाव या भारतीय धर्म दर्शन से इसकी निकटता की जाँच इस शोधपत्र का भाग नहीं बन सकी है। एक उल्लेखनीय तथ्य है की अब बहुत से विद्वान इस ग्रन्थ को किसी ईसाई पादरी द्वारा रचित मानते हैं और इसकी विश्वसनीयता पर संदेह करते हैं। उनका तर्क है की यह ग्रन्थ एकेश्वरवाद के दर्शन को लेकर चलता है जो हिन्दू धर्म का मूल स्वरूप नहीं है। हालांकि यह तर्क भी अपने आप में ही निराधार है क्योंकि हिन्दू दर्शन, जिसे आर्य दर्शन या सनातन दर्शन कह सकते हैं, वह वैदिक काल से ही एकेश्वरवादी है। ऋग्वेद का सूत्र 'एकम सत विप्रा बहुधा वदन्ति' उपनिषद का 'एकोहं बहुस्याम' उसी एकेश्वरवाद का प्रमाण है। श्रीमद्भगवद् गीता का वचन 'वासुदेवः सर्वमिति' अथवा अन्य कोई भी ग्रन्थ हो, अपने मूल में एकेश्वरवादी हैं।¹⁵ एजोरवेदम की विश्वसनीयता बिना भावी शोधकार्य के प्रमाणित नहीं हो सकती किन्तु हिन्दू दर्शन निश्चित रूप से एकेश्वरवाद का भी वक्ता है।

यह अत्यंत महत्वपूर्ण है की एजोरवेदम का खंडन, वेदों को लेकर हमारी समझ तथा हिन्दू दर्शन के प्रति अंग्रेजों के दृष्टिकोण में बदलाव की कहानी के लिए सबसे महत्वपूर्ण घटक है। एजोरवेदम का खंडन उसकी प्रसिद्धि के साथ ही शुरू हो गया था क्योंकि इस ग्रन्थ का प्रयोग करके ही वोल्तेयर ने ईसाई मान्यताओं को चुनौती दी थी। फ्रांस की क्रांति पर वोल्तेयर का कितना व्यापक प्रभाव था, यह जगजाहिर है। ऐसे में उसके द्वारा ईसाई मान्यताओं को चुनौती देना और एक पीगन रिलिजन के ग्रन्थ को बाइबिल के ऊपर स्थापित करना ईसाई मत के रक्षकों के लिए बुरे सपने जैसा था। साथ ही यह अंग्रेजों के लिए भी कोई अच्छी खबर नहीं थी की उनके अधीनस्थ देश की संस्कृति को उन्हीं के मत से जुड़ा एक प्रसिद्ध विद्वान, एक श्रेष्ठतर ज्ञान का संरक्षक बता रहा है।

शोधपत्र का उद्देश्य यह स्थापित करना नहीं है कि एजोरवेदम का खंडन किसी साजिश के तहत किया गया कार्य था और एजोरवेदम कोई ऐसा ग्रन्थ था जो हिन्दू मान्यताओं को एकमात्र सत्य के रूप में स्थापित कर देता, न ही ऐसा कहा जा सकता है की ईसाई मिशनरियों ने इसके विरुद्ध मोर्चा खोल दिया। ऐसा कोई दावा बिना विस्तृत शोध के नहीं किया जा सकता। वास्तव में एजोरवेदम की प्रामाणिकता का प्रथम खंडन पियरे सोनेराट⁴ ने अपनी पुस्तक वॉयेज ऑक्स इंडेस ओरिएंटल्स (पेरिस, 1782) में किया था।¹⁶ उन्होंने दावा किया की यह ग्रन्थ यह वेदों में से एक नहीं है, बल्कि यह एक ईसाई मिशनरी का कार्य है, जो मसूलीपट्टनम में लिखा गया था। ऐसा भी नहीं है की पियरे सोनेराट की पहचान किसी षडयंत्रकारी ईसाई पादरी की है, बल्कि उन्हें हम प्रारंभिक नृशास्त्री और प्रकृतिवादी मान सकते हैं, क्योंकि उन्होंने हिन्दू धर्म और भारतीय समाज का व्यापक अध्ययन किया और उसकी प्रशंसा भी की।¹⁷

⁴ Pierre Sonnerat

यह ग्रन्थ ग्रन्थ ईसाई पादरी द्वारा रचित भले हो लेकिन इसे हिन्दुओं के रिलिजस कन्वर्जन के लिए लिखा गया था ऐसा इसलिए नहीं माना जा सकता क्योंकि यह ग्रन्थ कहीं भी ईसा मसीह का नाम नहीं लेता, हालांकि यह ईसाई मान्यताओं और भारतीय धर्म दर्शन के बीच सेतु बनने का प्रयास करता है. जो भी हो इतना अवश्य है की ब्रिटिश दृष्टिकोण से स्वतंत्र रूप से, वैदिक दर्शन को समझने का यह अंतिम बड़ा प्रयास था.

बनारस संस्कृत कॉलेज और वेद :-

इसी सदी के उत्तरार्ध में एक अन्य घटना बनारस में और हो रही थी. काशी में कंपनी राज ने संस्कृत कॉलेज खोलने का निर्णय किया था. यह बनारस कॉलेज इस मामले में एक अनूठा प्रयास था की इसने संस्कृत साहित्य के संरक्षण का ठोस प्रयास किया. साथ ही इसने वेदों को समझने में आ रही भाषा की समस्या को दूर करने का भी प्रयास किया. यहाँ से वेदों का अंग्रेजी में रूपांतरण शुरू हुआ और वेदों की व्याख्या पर अंग्रेजी प्रभाव भी हावी होने लगा. यह एक रोचक तथ्य है की इस कॉलेज से जुड़े विद्वानों ने जब वेदों की भाषा का रूपांतरण शुरू किया तो इनमें से अधिकांश ने प्राथमिक स्रोत के रूप में श्रियुत सायणाचार्य के भाष्य का ही प्रयोग किया. श्रियुत सायणाचार्य ने वेदों के जो भाष्य किए हैं उनमें देवों के स्वरूप का जैसा निरूपण हुआ है, उसे लेकर विद्वानों का मत है की वह प्रकृति की शक्तियों का द्योतक है.¹⁸ यद्यपि स्वयं श्रियुत सायणाचार्य इस ओर सजग थे की वेदों में इंद्रादी देवों के रूप में पूजित परब्रम्ह एक ही सत्ता है.¹⁹ किन्तु रूपांतरण केवल भाषा का होता है, अर्थ को समझना पड़ता है और बनारस कॉलेज से जुड़े विद्वान् दाराशिकोह की भांति किसी गुरु शिष्य परंपरा से नहीं आते थे और उन्होंने केवल संस्कृत भाषा का अध्ययन करके वेदों का अंग्रेजी रूपांतरण कर दिया इसलिए वह उसके दार्शनिक और आध्यात्मिक पक्ष तक नहीं पहुंच सके. कालांतर में महर्षि अरविन्द ने इस दिशा में जो प्रयास किए हैं वे श्रियुत सायणाचार्य के भाष्य को गलत ठहराए बिना वेद की अलग व्याख्या देते हैं. उन्होंने माना है की यह सम्भव है की आरम्भ में इन देवों की पूजा प्राकृतिक शक्ति के रूप में शुरू हुई हो, किन्तु बाद में इन्होंने गंभीर आध्यात्मिक अर्थ प्राप्त कर लिया.²⁰

एजोरवेदम के मूल संस्कृत पाठ की खोज के लिए बंगाल एशियाटिक सोसाइटी ने 1848 में प्रयास भी किए लेकिन ऐसा कोई मूल संस्कृत पाठ नहीं मिला. सम्भवतः ऐसा कोई पाठ मिल भी नहीं सकता था क्योंकि यह ग्रन्थ किसी संस्कृत ग्रन्थ का रूपांतरण न होकर हिन्दू धर्म की सीमित दार्शनिक समझ पर लिखी गई टिका थी. यह टिका तात्कालिक ब्रिटिश भारतविदों के लिए समझना असम्भव रहा होगा क्योंकि तब तक वेदों के दर्शन का एकेश्वरवादी स्वरूप बीते कल की बात हो चुकी थी. जिस वाराणसी ने दारा शिकोह को उपनिषद का ज्ञान देकर 'एकेश्वरवाद के गंभीर दर्शन' का स्वर गुंजायमान किया था, यूरोप में वेदों को जानने की एक ललक पैदा की थी, उसी वाराणसी में बने संस्कृत कॉलेज ने वेदों के इस स्वरूप पर पर्दा डाल दिया और उसे नेपथ्य में धकेल दिया तथा उसके स्थान पर वेदों के बहुदेववादी रूप को आगे ला दिया.⁵ बहुदेववाद से अधिक नुकसान तब हुआ जब वेदों के गलत पाठ ने आर्य नस्ल के सिद्धांत का पोषण किया. क्योंकि अंततः यही सिद्धांत यूरोप में ऐसे हावी हुआ की एक शताब्दी पहले जिस यूरोप में उच्चतर आध्यात्मिक और मानवतावादी ज्ञान की बात हो रही थी, वहां नस्लवादी विमर्श जोर पकड़ने लगा.²¹ जैसे वोल्टेयर ने फ्रांस की क्रांति का वैचारिक बीज बो कर यूरोप को लोकतान्त्रिक सरकार का एक बहुमूल्य उपहार दिया था, नस्लवादी विमर्श और आर्य सिद्धांत ने नस्लीय भेद और नाजीवाद को जन्म दिया. ऐसा नहीं है की यूरोप में हुए इन सभी परिवर्तनों का केंद्र काशी की भूमि थी, किन्तु इन परिवर्तनों के स्वर जिस तार से झंकृत हो रहे थे, उसका एक सिरा काशी में निश्चित रूप से स्थापित था. सम्भवतः यह केवल संयोग नहीं है की सिर ए अकबर लिखे जाने के बाद अचानक यूरोप में भारतीय धार्मिक दर्शन को लेकर सकारात्मक विमर्श आरम्भ हुआ. निश्चित रूप से कहा जा सकता है की सिर ए

⁵ देखा जाए तो यह रूप भी पूरी तरह गलत चित्र नहीं दिखाता, वेदों का रूप बहुदेववादी है लेकिन उसका स्वरूप एकेश्वरवादी है.

अकबर को लेकर पर्याप्त शोध की सम्भावना है. एक और पहलू जिसपर भावी शोधकार्य की असीम संभावना है, वह यूरोपीय मानस पर भारतीय दर्शन के प्रभाव के आंकलन से जुड़ा है.

निष्कर्ष :-

यह शोधपत्र यह स्थापित करता है की बनारस कॉलेज की स्थापना के पूर्व वेदों को लेकर जो विभिन्न दार्शनिक दृष्टिकोण व्याप्त रहे होंगे उनमें से एक उनके गंभीर आध्यात्मिक व्याख्याओं से जुड़ा हुआ है. साथ ही सिरि ए अकबर ने भारतीय आध्यात्मिक परम्परा को यूरोप के लिए सुग्राह्य बनाया. एक उल्लेखनीय तथ्य यह है की सिरि ए अकबर की रचना के समय मुगल दरबार में श्रीयुत कविंद्राचार्य सरस्वती नाम के विद्वान का बहुत प्रभाव था. दारा शिकोह उनका शिष्य था एवं मुगल बादशाह शाहजहाँ पर भी उनका प्रभाव था. उनके आग्रह पर शाहजहाँ ने तीर्थयात्रा कर हटाया था.²² उन्होंने भी वाराणसी को अपनी गतिविधियों का केंद्र बनाया था. वे वेदांत दर्शन के प्रकांड विद्वान थे. किन्तु वेद पर लिखी गई उनकी टिका अनुपलब्ध है जो सम्भवतः इंग्लैंड के संग्रहालय में रखी है. श्रीयुत कविंद्राचार्य सरस्वती के कार्यों का अध्ययन श्रीयुत सायणाचार्य की व्याख्या के समानांतर नई रेखा खींचता है. श्रीयुत सायणाचार्य की व्याख्याओं की आलोचना तथा आरम्भिक अंग्रेज भारतविदों के कार्यों को पूर्णतः गलत मानना अनुचित है, क्योंकि इन्हीं लोगों के प्रयास के कारण ही आज वेदों की रहस्यवादिता को हमारी बुद्धि थोड़ा बहुत भेद पाई है. शोधपत्र का उद्देश्य इस वैदिक दर्शन की हमारी समझ को विस्तृत करना है और ऐतिहासिक विकासक्रम के उन सिरों को खोजना है जो सायणवादी व्याख्या में दब गए हैं.

अंत में यह उल्लेख करना उचित होगा की वैदिक दर्शन की प्राच्यवादी व्याख्याओं के प्रत्युत्तर में महर्षि अरविन्द का विस्तृत कार्य है जो वेदों के आध्यात्मिक पक्ष से जुड़ा है. वेदों को लेकर हमारी समझ का विस्तार अनुभूतिजन्य ज्ञान के आधार ओर हो सकता है, जो की गुरु परंपरा के पालन से सम्भव है. मूलतः यह साधना का मार्ग है. मुंडक उपनिषद का श्लोक 2.1.6 कहता है 'उस परमेश्वर से ही ऋग्वेद की ऋचाएँ , सामवेद के मन्त्र.....आदि उत्पन्न हुए हैं, जहाँ चन्द्रमा प्रकाश फैलाता है और जहाँ सूर्य प्रकाश देता है।' तथा श्लोक संख्या 1.2.13 में जानियों को आदेश करता है कि 'जो इस प्रकार आया है, जिसका हृदय भली-भाँति वश में है और जिसने अपनी इन्द्रियों को वश में कर लिया है, उसे वह ब्रह्मविद्या सिखाए।' श्रीमद्भगवद् गीता इस लक्ष्य के लिए भक्ति का भी आदर्श देती है, किन्तु इन मार्गों का अनुसरण किए बिना केवल भाषाई ज्ञान से वेदों का अर्थ समझना भ्रामक निष्कर्ष की संभावना को बढ़ा देता है. अपने संसाधनों और संस्थाओं के माध्यम से काशी पुनः इस दिशा में केंद्र बन सकती है. वेद वर्तमान दार्शनिक विमर्श में भी उतने ही प्रासंगिक हैं जितने 16वीं शती में थे तथा अपने प्रभाव में आज उससे भी अधिक प्रभावी हैं जितना आर्य सिद्धांत के दार्शनिक विमर्श में थे. इनका भ्रामक अर्थ चिंतन जितना नकारात्मक रहा है, वास्तविक अर्थज्ञान के समीप पहुंचने का प्रयास उतना ही सकारात्मक हो सकता है. वर्तमान यूरोप का दर्शन उत्तर आधुनिकता और अस्तित्ववाद के विचार को धुव बनाकर घूम रहा है और वैदिक दर्शन इसे नई सकारात्मक दिशा दे सकता है. लेकिन इसके लिए आवश्यकता है की पहले खोए हुए सिरे खोजे जाएं. सायणवादी परम्परा को पकड़कर वैदिक ज्ञान की दुनिया में प्रवेश किया जा सकता है. किन्तु इसके विभिन्न अर्थ समझने का प्रयास करने के लिए सायणवादी व्याख्या के अतिरिक्त अन्य मार्ग भी खोजने होंगे.

संदर्भ ग्रन्थ सूची-

1. Sweetman, Will; The Absent Vedas; University of Otago; Journal of the American Oriental Society; December 2019
2. Encyclopaedia Britannica. (n.d.). *How did St. Francis Xavier shape Catholicism?* Retrieved from https://www.britannica.com/story/how-did-st-francis-xavier-shape-catholicism

3. Maxham, Roy; *The Theft of India: The European Conquests of India, 1498-176*; Harper Collins; 2016
4. Sweetman, Will; *Reading Jesuit Readings of Hinduism*; 15 Nov 2019; https://doi.org/10.1163/2468-7723_jho_COM_217891
5. Sweetman, Will; *The Absent Vedas*. Ibid.
6. Dandekar, R. N.; *SOME TRENDS IN INDOLOGICAL STUDIES*; Annals of the Bhandarkar Oriental Research Institute; Vol. 58/59, Diamond Jubilee Volume (1977-1978), pp. 525-541
7. Henn, Alexander Ernst; Roberto de Nobili and the Myth of the Modern Conceptualization of Religion in Seventeenth-Century India; *History of Religions*; Volume 62, Number 2; Chicago Journal.
8. Sweetman, Will; *The Absent Vedas*. Ibid.
9. Mitchell, John Murray; *The Great Religions of India*; OLIPHANT, ANDERSON & FERRIER; Edinburgh and London; 1905
10. Joan-Pau Rubiés; *The Jesuit Discovery of Hinduism Antonio Rubino's Account of the History and Religion of Vijayanagara (1608)*; *Archiv für Religionsgeschichte*; 3. Band; 2001
11. Sweetman, Will; *Reading Jesuit Readings of Hinduism*; Ibid.
12. Sweetman, Will; *Reading Jesuit Readings of Hinduism*; Ibid.
13. Maurer, Walter Harding; *Ezourvedam: A French Veda of the Eighteenth Century* by Ludo Rocher; *Journal of the American Oriental Society*, Vol. 108, No. 2 (Apr. – Jun., 1988); pp. 326
14. BRYANT, EDWIN; *The Quest for the Origins of Vedic Culture The Indo-Aryan Migration Debate*; OXFORD UNIVERSITY PRESS PRES; 200; pp 18
15. येऽप्यन्यदेवता भक्ता यजन्ते श्रद्धयान्विताः ।
तेऽपि मामेव कौन्तेय यजन्त्यविधिपूर्वकम् ॥ - श्रीमद्भगवद्गीता 9.23
16. Maurer, Walter Harding; *Ezourvedam: A French Veda of the Eighteenth Century* by Ludo Rocher; *Journal of the American Oriental Society*, Vol. 108, No. 2 (Apr. – Jun., 1988); pp. 327
17. The New Indian Express. "Pierre Sonnerat and His Visit." *The New Indian Express*, 4 Oct. 2010, <https://www.newindianexpress.com/states/tamil-nadu/2010/Oct/04/pierre-sonnerat-and-his-visit-192154.html>. Accessed 8 Mar. 2025.
18. डॉ० वेदालंकर, जयदेव; *भारतीय दर्शन का इतिहास भाग एक*; न्यू भारतीय बुक कॉर्पोरेशन; दिल्ली ; 2007; pp 57
19. डॉ० वर्मा, वीरेंद्र कुमार; *श्रीयुत सायणाचार्यविरचित ऋग्वेद भाष्य भूमिका – हिंदी व्याख्या*; चौखम्बा ओरिएण्टलिया; वाराणसी; 1986; pp 3
20. महर्षि अरविन्द ; *वेद रहस्य पूर्वार्ध*; अनुवादक आचार्य अभयदेव विद्यालंकार एवं जगन्नाथ वेदालंकार; श्रीअरविंद आश्रम ट्रस्ट; पांडिचेरी; 2018; pp 3-4
21. BRYANT, EDWIN; *The Quest for the Origins of Vedic Culture The Indo-Aryan Migration Debate*; OXFORD UNIVERSITY PRESS PRES; 2001; pp 30
22. Balakrishna, Sandeep; *How the blazing eloquence of Acharya Kavindra became a moonlit service to Sanatana Dharma*. *Dharma Dispatch*. Retrieved March 9, 2025, from <https://www.dharmadispatch.in/history/how-the-blazing-eloquence-of-acharya-kavindra-became-a-moonlit-service-to-sanatana-dharma>



लौटे हुए मुसाफिर और नफरत की राजनीति

डॉ. राम आशीष*

भारत का बंटवारा इतिहास की गंभीरतम झंझावातों में से एक था। एक झटके में एक करोड़ बीस लाख लोग बेघर हो गये, दस लाख जानें गयीं। कहा जाता है कि पचहत्तर हजार स्त्रियाँ अगवें और विभिन्न प्रकार की अमानवीय जबर्दस्तियों की शिकार हुईं। उस समय धर्म के नाम पर जो भी अत्याचार हुए, उससे यह साबित हो गया कि यदि मानव अपनी संवेदना छोड़ दें तो वह पशु से भी क्रूर हो जाता है। धार्मिक उन्माद ने वर्षों के भाईचारा को जलाकर खाक कर दिया। विभाजन की कीमत दोनों मुल्कों में रह रहे निर्दोष हिन्दू और मुसलमानों ने अपने रक्त से चुकाई। नरेन्द्र मोहन ने लिखा है— “स्वाधीनता मिलने के साथ ही विभाजन के भीषण और भयानक दौर से हमें गुजरना पड़ा। दुःख, तकलीफों, संतापों, यातनाओं और संघर्षों का ऐसा सिलसिला शुरू हुआ जिसका आज भी कोई अंत नज़र नहीं आ रहा है। एक झटके में सभ्यता और संस्कृति, जाति और कौम, राष्ट्र और जाति सम्बन्धी अवधारणाओं में ऐसी तब्दीली ला दी कि हम हतप्रभ से देखते रहे गये। हमारा सोच-विचार, व्यवहार, आचरण, दृष्टिकोण, संवेदनाएँ और रिश्ते इससे दूर तक प्रभावित हुए और हम आज भी उन प्रभावों से मुक्त नहीं हो पाये।”¹

कमलेश्वर का उपन्यास ‘लौटे हुए मुसाफिर’ में लेखक ने यह स्पष्ट करने का प्रयास किया है कि विभाजन की समस्या जो एक छोटे से कस्बे तक सीमित थी, लेकिन साम्प्रदायिक शक्तियों ने उसे विभाजन की चिंगारी में तब्दील करके कौमी संघर्ष तक पहुँचा दिया। यह उपन्यास एक छोटी बस्ती की गाथा प्रस्तुत करने के साथ-साथ बस्ती में घटित हो रही घटनाओं की खोज और उसकी भयावहता को भी स्पष्ट करता है। यह वही बस्ती थी जिसने 1857 में अंग्रेजों से लोहा लिया था। हर कौम एक-दूसरे के साथ कंधा से कंधा मिलाकर अंग्रेजों की गोलियों को अपने सीने पर झेला था। 1857 के बाद इस गाँव में परिवर्तन दिखने लगा। अंग्रेज धीरे-धीरे पूरे देश पर छा गये थे। बस्तियों में अंग्रेजों के विविध कार्यालय भी खुलने लगे थे। अंग्रेजों ने हिन्दू और मुसलमानों के बीच के वैमनस्य को और धार देना शुरू कर दिया था। इसके बावजूद भी 1942 में इस बस्ती के हिन्दू और मुस्लिम लड़कों ने उधम मचाया था। उन्हें नहीं पता था कि आजादी मिलेगी या नहीं, फिर भी उन्हें इतना मालूम था कि कुछ करना चाहिए और उन्होंने किया। परन्तु 1945 से ही इस बस्ती के नागरिकों के दिलों में एक भूचाल आया तथा देखते ही देखते पूरी हवा बदल गयी। साम्प्रदायिकता की आँच और नफरत की गंध ने इस बस्ती को बीमार कर दिया। लेखक ने लिखा है— “सिर्फ नफरत की आग ने इस बस्ती को जलाया था।”² यह आग मात्र चिकवों की बस्ती में नहीं लगी थी। इस आग से सम्पूर्ण भारत तप रहा था। राही मासूम रजा के ‘आधा गाँव’ में भी गंगौली की भोली-भाली मुस्लिम आबादी को अलीगढ़ से आये काली शेरवानी वाले कारकूनों द्वारा पाकिस्तान के नाम पर छला जाता है। उनसे हिन्दुओं से नफरत करने के लिए यहाँ तक कहा जाता है कि— “आजादी के बाद जब हिन्दू आपकी माँ बहन को निकाल ले जाय तो फर्याद न कीजिएगा।”³

कहना न होगा कि उन दिनों दोनों कौमों को कभी हिन्दू बहुसंख्यक तो कभी मुस्लिम बहुसंख्यक का भय दिखाकर सियासी मोहरे के रूप में प्रयोग किया। कमलेश्वर ने इस उपन्यास की शुरुआत आजादी के कई वर्षों के बाद की बस्ती की अवस्था से किया था। आज बस्ती की दशा को देखकर वहाँ रह गये लोगों का मन रो रहा था। आज भी बस्ती भौगोलिक रूप से वैसा ही जैसा आजादी से पूर्व था। परन्तु आज बस्ती को उदासी के कुहासों ने घेर लिया है। शामें ठहर सी गयी हैं। वक्त रूक सा गया है। कभी इस बस्ती में रौनक थी। दोनों सम्प्रदाय के लोग आपस में मिलकर प्रेम और सौहार्द से रहा करते हैं। एक दूसरे के त्यौहारों में भाग लिया करते थे। राजनीति से दूर ये लोग एक दूसरे के सुख-दुःख में सम्मिलित हुआ करते थे। कमलेश्वर ने लिखा है— “जब हिन्दुओं की बस्ती से ताजिए गुजरते थे, तो उस पर लोग गुलाब जल छिड़कते थे और हिन्दू औरतें अपने बच्चों को गोदी में उठाये ताजिए के नीचे से गुजरती थीं और दौड़-दौड़कर फँके हुए मखाने बीनकर श्रद्धा से आँचल के खूँट में बांध लेती थीं। जब रामलीला का विमान उठता तो मुसलमान औरतें दरवाजे की चींके या बोरी के पर्दे उलटकर मूर्तियों के शृंगार की तारीफ करती थीं

* असि. प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, हरिश्चन्द्र स्नातकोत्तर महाविद्यालय, वाराणसी

और उनके बच्चे दूर तक विमान के साथ शोर मचाते हुए आया करते थे।⁴ यह बस्ती जो कौमी एकता और भाई-चारा का मिशाल थी, वही बस्ती 1945 आते-आते सियासत का शिकार हो जाती है।

कहना न होगा कि जो बस्ती सुख-शांति से जी रही थी, उस बस्ती में एक दिन मकसूद और अलीगढ़ के सियासी कारकून यासिन का आगमन होता है।

यहीं से नफरत की चिंगारी फैलने लगती है। मस्जिदों में बैठकें शुरू हो जाती हैं। लोगों के मन में हिन्दुओं, कांग्रेस और गांधी के प्रति नफरत की आग फैलायी जाती है। इन्हीं के प्रतिक्रिया स्वरूप बस्ती में संघ का आगमन होता है। दोनों नफरत की आग फैलाने में पूरे मनोवेग से लगे रहे। परिणामस्वरूप धीरे-धीरे अफवाहें फैलने लगीं। कल तक के दोस्त हमसाया हिन्दू-मुसलमान एक-दूसरे को अविश्वास की दृष्टि से देखने लगे। दोनों जातियों को अपने हिन्दू और मुसलमान होने का एहसास बढ़ने लगा। बस्ती में बाहर से सियासी लोगों की भूमिका के विषय में उपन्यास में लिखा गया है कि— “जब सियासी कारकून ने देखा कि इन चिकवों की बस्ती में कोई सनसनी नहीं है, तो उसके दिल को चोट सी लगती थी। जब वह देखता कि मस्जिद में मकतब लगता है और मस्जिद की चहारदीवारी में पाठशाला लगती है और सब कुछ बदस्तूर चल रहा है तो वह सह नहीं पाता था।”⁵

धीरे-धीरे बस्ती में यह प्रचार किया जाने लगा कि हिन्दुस्तान में दो कौमों रहती हैं और दोनों एक साथ नहीं रह सकती हैं और मुसलमान हिन्दू सरकार के मातहत नहीं रहेगा। दूसरी ओर संघ ने भी आपसी वैमनस्य की परिणति हिन्दू राष्ट्र में देख रहा था। संघ द्वारा भी सभाओं में कहा जाने लगा कि हिन्दुओं ने अपना तीसरा नेत्र खोल दिया है, जो भी विदेशी हैं वह सभी इसमें भस्म हो जाएगा। यहाँ विदेशी का आशय मुसलमानों से है।

16 अगस्त 1946 ‘डायरेक्ट एक्शन डे’ को वातावरण में और ज़हर घुल जाता है। तभी पाकिस्तान की घोषणा होती है। मुसलमान अंदर ही अंदर खुश तो हुआ, लेकिन वह अपने को ऊपर-ऊपर कटा हुआ महसूस कर रहा था। उसके अंदर एक भय का वातावरण निर्मित हो गया था। पाकिस्तान बनने के बाद धीरे-धीरे चिकवों के बस्ती के अमीर मुसलमान पाकिस्तान जाने लगे। आस-पास के शहरों और कस्बों से भी इस तरह की सूचनाएँ बस्ती में आने लगती हैं। इन खबरों से भय के साथ-साथ भविष्य के प्रति शंका को भी बल मिलने लगता है। धीरे-धीरे बस्ती के लोगों ने भी पाकिस्तान जाने का निर्णय लिया। लेकिन यह भी बहुत बड़ी सच्चाई है कि अमीर लोग तो पाकिस्तान चले गये और वे पाकिस्तान पहुँचे भी। परन्तु जो गरीब मुसलमान थे, जिनको लगता था कि पाकिस्तान में उनकी आने वाली नस्लों को फलने-फूलने का पर्याप्त अवसर मिलेगा, वास्तव में वे पाकिस्तान पहुँचे ही नहीं। राही मासूम रज़ा ने ‘आधा गाँव’ के संस्मरणात्मक टिप्पणी में लिखा है— “यह उपन्यास लिखने के बाद मैंने जो सबसे महत्वपूर्ण बात जानी वह यह कि यहाँ का मुसलमान पाकिस्तान नहीं गया। यदि गया भी तो वह हिन्दुओं के डर से नहीं गया। वह लाहौर गया, ढाका गया, कराची गया, पाकिस्तान नहीं गया। हमें शहर और गाँव में फर्क करना चाहिए। गंगौली में तो हिन्दू-मुस्लिम दंगे नहीं हुए थे। परन्तु जमींदारी गंगौली में भी खत्म हुई थी। समाज का पूरा ढांचा टूट गया था। गंगौली का जमींदार गाजीपुर में पान की दुकान नहीं खोल सकता था। पर कराची में उसे कौन जानता है।”⁶ वास्तव में ‘लौटे हुए मुसाफिर’ का मुसलमान अपनी जड़ों से छूटकर पाकिस्तान को गया परन्तु वह पहुँचा नहीं। वह लगभग चौदह पन्द्रह वर्षों बाद पुनः अपने गाँव लौटता है। वह अपने आपको पाकिस्तान के नाम पर छला हुआ महसूस कर रहा था। अब बस्ती का जो घर उसका था लेकिन अब नहीं है। जो खेत उसके थे लेकिन अब नहीं है। वह गाँव उसकी जन्मभूमि है। विभाजन ने उनके जीवन में यही परिवर्तन लाया था कि जो बच्चे अपने माँ बाप के साथ गये थे वह अब बड़े होकर अपने गाँव में पुनः आ गये हैं।

‘लौटे हुए मुसाफिर’ उपन्यास में समाज के सबसे निचले तबके को केन्द्र में रखा गया है। यही निचला तबका ही सबसे अधिक मात्रा में लूटा गया। आज भी इसी निचले तबके का प्रयोग राजनीतिज्ञों और धर्मान्धों द्वारा किया जाता है। इस उपन्यास में इसी तबके द्वारा नफरत की आग तेजी से फैलायी गयी। इसी कारण लेखक का ध्यान सर्वसाधारण पर सबसे अधिक रहा है। यह उपन्यास विभाजन एवं विस्थापन पर लिखे अन्य उपन्यासों से इस मायने में अलग है कि कमलेश्वर के मुसाफिर उसी स्थान पर लौट कर पुनः वापस आते हैं, जहाँ से वे गये थे। नफरत की आँच में झुलस कर कुछ हमेशा के लिए वापस गये। कुछ बीच रास्ते में ही रह गये, कुछ लौट आये। कब? जब नफरत की आग समाप्त हो गयी। अर्थात् अनुकूल वातावरण का निर्माण हो गया और वे लौट आये। उनकी यह नफरत शाश्वत नहीं थी। लेखक यह बताना चाहता था कि नफरत मनुष्य का अस्थिर धर्म है। सहज, स्नेह और प्रेम उसका स्थित धर्म है। मनोवैज्ञानिक दृष्टि से यदि

विचार किया जाय तब भी यही स्पष्ट होता है कि नफरत मनुष्य का स्थिर धर्म नहीं है। नफरत में प्रचंड शक्ति होती है। डॉ० रज़ा के शब्दों में— “नफरत! यह शब्द कैसा अजीब है। ‘नफरत’ यह शब्द राष्ट्रीय आन्दोलन का फल है।”⁷

कमलेश्वर विभाजन को राजनीतिक, आर्थिक अथवा सामाजिक समस्या न मानते हुए उसे मानव मन की समस्या मानते थे। वास्तव में चिकवों की बस्ती कभी भी गरीबी, अपमान, भुखमरी, बेबसी से नहीं हारी थी, पर नफरत की आग और शंका पूर्ण भय का धुआँ वे बर्दास्त नहीं कर पाये। परिणामस्वरूप वे अपने जड़ों से उखड़कर अपने ही बस्ती में बेगाने बन गये। जहाँ बचपन बीता वहीं आज मजदूरी करने के लिए बाध्य है। परन्तु अपनी जन्मभूमि के प्रति अथाह प्रेम ने विस्थापन के दर्द झूठा साबित कर दिया।

संदर्भ :

1. विभाजन की त्रासदी : भारतीय कथा दृष्टि— नरेन्द्र मोहन, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, सं० 2008, पृ० 07
2. लौटे हुए मुसाफिर— कमलेश्वर, हिन्द पॉकेट बुक्स, दिल्ली, पृ० 09
3. आधा गाँव— राही मासूम रज़ा, राजकमल पेपरबैक्स, दिल्ली, पृ० 240
4. लौटे हुए मुसाफिर— कमलेश्वर, हिन्द पॉकेट बुक्स, दिल्ली, पृ० 5-6
5. वही, पृ० 19-20
6. हिन्दी उपन्यास का विकास— मधुरेश, सुमित प्रकाशन, इलाहाबाद, सं० 2011, पृ० 146
7. हिन्दी उपन्यास विविध आयाम— चन्द्रभानु सोनवणे पुस्तक संस्थान, नेहरु नगर, कानपुर, सं० 1977, पृ० 145



नवादा जिला में मानवीय संसाधन एवं पर्यावरणीय अवनयन – एक भौगोलिक अध्ययन

दुर्गा शंकर कुमार*

शोध सारांश

किसी प्रदेश के संसाधन एवं पर्यावरणीय अध्ययन में मानवीय संसाधन का केन्द्रीय स्थान है, क्योंकि पर्यावरण का कोई भी पदार्थ तब तक संसाधन नहीं बनता है जब तक कि मनुष्य अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु उसका उपयोग नहीं करता है। वह प्राकृतिक और सांस्कृतिक वातावरण का उपयोग करता है। भूमि, जल, मिट्टी, खनिज उर्जा, वनस्पति, जीव, जन्तु आदि का उपयोग करके वह उत्पादन, कृषि, पशुपालन, उद्योग, व्यापार, परिवहन आदि को संभव बनाता है। इस क्रम में आर्थिक विकासीय प्रक्रियाओं के कारण कई पर्यावरणीय एवं पारिस्थिकीय समस्याएँ उत्पन्न हो जाती हैं। वस्तुतः एक तरफ जहाँ सामाजिक आर्थिक, वैज्ञानिक, तकनीकी विकास हुए हैं तो दूसरी तरफ विकट पर्यावरणीय दुष्प्रभाव भी दृष्टिगोचर हुए हैं। प्राकृतिक संसाधनों का तेजी से विदोहन एवं नगरीय विस्तार के कारण पर्यावरण पर दूरगामी प्रतिकूल प्रभाव पड़े हैं।

अध्ययन क्षेत्र नवादा जिला में कुल जनसंख्या 2219146 व्यक्ति (2011) है जिसमें ग्रामीण जनसंख्या 2003567 व्यक्ति तथा नगरीय जनसंख्या 215579 व्यक्ति है। इस जिले में औद्योगिक विकास की प्रक्रिया धीमी है यद्यपि मानवों की संख्या में तीव्र गति से वृद्धि हो रही है। पर्यावरण पर मानवों का प्रभाव कृषि कार्यो भूमि एवं जल स्रोतों पर अधिक दृष्टिगोचर हो रहे हैं। अतः अध्ययन क्षेत्र में मित्रवत् पर्यावरण विकास (इको फ्रेंडली डेवलपमेंट) की संभावनाएँ हैं।

मुख्य शब्द – मानव संसाधन, पर्यावरण अवनयन, भौतिक, सांस्कृतिक, अंतर्क्रिया, अंतर्संबंध, जनसंख्या वृद्धि, घनत्व, जैविक –अजैविक तत्व, इको फ्रेंडली डेवलपमेंट।

परिचय – भौगोलिक अध्ययन में पर्यावरण की अवधारणा अत्यंत व्यापक है। भूगोल में पृथ्वी तल का मानव के निवास के रूप में अध्ययन किया जाता है। पर्यावरण के जैविक – अजैविक तत्व एवं मनुष्य के अन्तर्क्रियाओं के फलस्वरूप स्थानिक कालिक रूप से घटित सभी तथ्य इसी में समाहित हैं।¹ वास्तव में मानव पर्यावरण संबंधों का अध्ययन का प्रमुख उपागम पारिस्थितिकीय उपागम है। इसके अन्तर्गत भूतल के प्राकृतिक पर्यावरण एवं प्रौद्योगिकीय स्तर पर विकसित मानव के बीच अन्तर्सम्बन्धों के स्थानिक गुणों का पारिस्थितिक तंत्र के संदर्भ में अध्ययन किया जाता है।² इस प्रकार पर्यावरण भौगोलिक अध्ययन का आधारी पक्ष है, क्योंकि यह समस्त जैव जगत का नियामक है।

अध्ययन का उद्देश्य – प्रस्तुत अध्ययन का मुख्य उद्देश्य अध्ययन क्षेत्र नवादा जिला (बिहार) में मानव संसाधन एवं पर्यावरणीय अंतर्सम्बन्धों को प्रकाश में लाना है। नवादा जिला एक कृषि प्रधान जिला है एवं भूमि पर जनदबाव अधिक है। जिसके कारण तीव्र गति से वन भूमि कृषि भूमि में परिवर्तित हुए हैं। अतः पर्यावरणीय अवनयन के प्रभावकों का विश्लेषण करना आवश्यक है ताकि सतत विकास हेतु आयोजना प्रस्तुत किया जा सके।

विधितंत्र – प्रस्तुत अध्ययन में अवलोकनात्मक एवं विश्लेषणात्मक विधि तंत्रों का प्रयोग करते हुए द्वितीयक स्रोतों से प्राप्त आँकड़ों का विश्लेषण कर मानव संसाधन एवं पर्यावरणीय अवनयन के कारकों की व्याख्या की गई है। जनसंख्या वृद्धि वितरण एवं घनत्व का परिकलन निम्न सूत्रों के द्वारा की गई है:-

1. प्रतिशत परिवर्तन = $\frac{\text{परवर्ती जनसंख्या} - \text{पूर्ववर्ती जनसंख्या}}{\text{पूर्ववर्ती जनसंख्या}} \times 100$
2. अंकगणितिय घनत्व = $\frac{\text{प्रदेश की कुल जनसंख्या}}{\text{प्रदेश का कुल क्षेत्रफल}}$
3. प्रतिशत वितरण = $\frac{\text{प्रखण्ड की कुल जनसंख्या}}{\text{जिले की कुल जनसंख्या}} \times 100$

* शोध छात्र, स्नातकोत्तर भूगोल विभाग, मगध विश्वविद्यालय, बोधगया

अध्ययन क्षेत्र

नवादा जिला बिहार के मगध प्रमण्डल में अवस्थित है। नवादा शहर इस जिले का प्रशासनिक मुख्यालय है। नवादा जिला का विस्तार 24° 31' 45" उत्तरी अक्षांश से 25° 6' 45" उत्तरी अक्षांश के बीच और 85° 17' 20" पूर्वी देशान्तर से 86° 3' 20" पूर्वी देशान्तरों के मध्य है। जिले का कुल क्षेत्रफल 2494 वर्ग किलोमीटर है। अध्ययन क्षेत्र के दो तिहाई भाग जिसमें अकबरपुर, नरहट, नारदीगंज, हिसुआ, नवादा, वारिसलीगंज, काशीचक, पकरीबरौवा प्रखण्ड शामिल है, मगध प्लेन के पूर्वी भाग में स्थित है।³ जिले के दक्षिणी एक तिहाई हिस्सा छोटानागपुर उच्च भूमि के बहिर्वर्ती अपरदित भू - भाग है। यहाँ ढलान वाले वनों से आच्छादित गाँव मिलते हैं।⁴ इस भाग में कौआकोल, गोविन्दपुर रोह, रजौली प्रखण्ड स्थित है। नवादा जिले में दो प्रमुख भू - वैज्ञानिक संरचनाएँ हैं - (1) ग्री - कैम्ब्रियन संरचना की छोटानागपुर नीस, अभ्रक शिष्ट, फिलाईट और क्वार्टजाइट (2) उत्तर एवं पूर्वी जलोढ़ के मैदान। उच्चावन की दृष्टि से जिले के दो भौगोलिक इकाइयों (i) दक्षिणी उच्च भूमि एवं (2) उत्तरी मैदान में विभाजित किया जा सकता है। जिले में माध्यम तापमान और उच्च आर्द्रता के साथ उष्णकटिबन्धीय मानसूनी जलवायु पाई जाती है, यहाँ अधिकतम तापमान 46.4° सेल्सियस तथा न्यूनतम तापमान 7° सेल्सियस रिकार्ड किया गया है। यहाँ औसत वर्षापात 913.75 मिलीमीटर होती है। इस जिले में तीन स्पष्ट ऋतुएँ शीत, गीष्म एवं वर्षा ऋतु पाई जाती है। भूतल पर निवास करने वाले मानव के जीवन पर भौतिक पर्यावरण के जिन अंगों का प्रभाव पड़ता है उनमें जलवायु का विशेष महत्व है।⁵ जिले में कई नदियाँ प्रवाहित होती हैं, जिनमें घाघर, पंचाने, तिलैया, धनराजय, खुरी, सकरी एवं नाटा नदी प्रमुख हैं। बिहार सरकार द्वारा 1954 - 1966 की अवधि के दौरान किए गए सर्वेक्षण में नवादा जिले में चार प्रमुख मिट्टी समूहों की पहचान की गई थी।⁶ ये हैं - जलोढ़ मिट्टी, बलुई मिट्टी, दक्षिणी उच्च भूमि की लाल और पीली मिट्टी तथा केवाल मिट्टी।

मानव संसाधन

पृथ्वी के समस्त संसाधनों में मानव सबसे महत्वपूर्ण संसाधन है क्योंकि मानव ही प्राकृतिक पदार्थों को संसाधन के रूप में विकसित करता है। मानव अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए पृथ्वी के भौतिक पर्यावरण में उपलब्ध भूमि, जल, मिट्टी, खनिज, उर्जा के संसाधनों, प्राकृतिक वनस्पतियों और जीव - जन्तु का उपयोग करके उत्पादन, पशुपालन, विनिर्माण उद्योग, व्यापार, परिवहन आदि का विकास करता है। इस प्रकार समस्त भौगोलिक अध्ययन में मानव का केन्द्रीय स्थान है।⁷ मानव की संख्या संस्कृति, श्रम, कुशलता आदि महत्वपूर्ण संसाधन हैं, इसीलिए मानव को एक प्रभावशाली आर्थिक संसाधन माना जाता है।⁸ अतः पृथ्वी के विभिन्न क्षेत्रों के अध्ययन में मानव की संख्या, उसका वितरण, वृद्धि संरचनात्मक विशेषताएँ आदि का अध्ययन महत्वपूर्ण हो जाता है-

जनसंख्या वृद्धि

जनसंख्या वृद्धि को जनसंख्या परिवर्तन भी कहा जाता है। वस्तुतः किसी क्षेत्रीय इकाई में रहने वाले समस्त निवासी को जनसंख्या कहा जाता है।⁹ एक निश्चित अवधि में किसी क्षेत्र विशेष में रहने वाले व्यक्तियों की संख्या में होने वाला परिवर्तन ही जनसंख्या परिवर्तन है।¹⁰ नवादा जिला का दशकीय वृद्धि एवं क्षेत्रीय वृद्धि तालिका सं० - 01 एवं 02 में प्रदर्शित किया जाता है।

तालिका सं० - 01 : नवादा जिला में जनसंख्या वृद्धि (1951 - 2011)

जनगणना वर्ष	कुल जनसंख्या	निरपेक्ष वृद्धि	प्रतिशत वृद्धि
1	2	3	4
1951	613724	58991	10.63
1961	741633	127909	20.84
1971	893937	152304	20.54
1981	1099177	205240	22.96
1991	1359694	260517	23.70
2001	1809696	450002	33.09
2011	2219146	409450	22.63

स्रोत:- सेन्सस ऑफ इण्डिया 2011 नवादा जिला सिरीज - II भाग XII - B एवं शोध क्षेत्र द्वारा गणन

तालिका सं० – 01 से स्पष्ट होता है कि 1951 – 2011 के मध्य अध्ययन क्षेत्र में लगभग तीन गुणा जनसंख्या में वृद्धि हुई है। इन पचास वर्षों में जिले में 1605422 व्यक्तियों की वृद्धि हो गई है। इसका मुख्य कारण स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात कृषि का विकास स्वास्थ्य संबंधी सुविधाओं का विकास एवं विभिन्न पंचवर्षीय योजनाओं के लाभकारी प्रभाव हैं।

तालिका सं० – 02 से स्पष्ट होता है कि नवादा जिला के जनसंख्या के वृद्धि में क्षेत्रीय विषमता है। 1991 – 2001 के दशक में नवादा जिला की जनसंख्या में 33.09 प्रतिशत एवं 2001 – 2011 के दशक में 22.6 प्रतिशत की वृद्धि हुई है। 2011 के जनसंख्या वृद्धि के गति के आधार पर नवादा जिला के प्रखण्डों को निम्न वर्गों में रखा जा सकता है।

तालिका सं० – 02
नवादा जिला में जनसंख्या की क्षेत्रीय वृद्धि (1991 – 2011)

क्र० सं०	प्रखण्ड	1991	2001	2011	दशकीय वृद्धि (प्रतिशत में)	
1	2	3	4	5	6	7
1	नारदीगंज	72139	98897	124716	37.09	26.1
2	नवादा	173671	253839	321491	46.16	26.7
3	वारिसलीगंज	121701	160680	187123	32.02	16.5
4	काशीचक	52909	60004	71886	13.40	19.8
5	पकरीबरौवा	111495	149288	183066	33.89	22.6
6	कौआकोल	97353	129187	143439	32.69	11.0
7	रोह	98026	131093	162507	33.73	24.0
8	गोविन्दपुर	60962	77764	95454	27.56	22.7
9	अकबरपुर	137806	184362	237292	33.78	28.7
10	हिसुआ	89514	112697	141074	25.89	25.2
11	नरहट	66352	89499	112042	34.88	25.2
12	मेसकौर	71708	88425	94358	23.31	6.7
13	सिरदला	103914	136369	178472	31.23	30.9
14	रजौली	102144	137592	166226	34.70	20.8
नवादा		1359694	1809696	2219146	33.09	22.6

स्रोत- डिस्ट्रिक्ट सेन्सस हैण्ड बुक नवादा जिला, सिरिज – II भाग XII – B 2011 एवं 2001 2. शोध छात्र द्वारा गणन

(1) निम्न जनसंख्या वृद्धि वाले प्रखण्ड (20% से नीचे) – इस वर्ग में वारिसलीगंज (16.5%), काशीचक (19.8%), कोआकोला (11%), मेसकौर (6.7%) प्रखण्ड शामिल हैं।

(2) मध्यम जनसंख्या वृद्धि वाले प्रखण्ड (20% – 25%) – इसके अन्तर्गत पकरीबरौवा (22.6%), रोह (24.0%), गोविन्दपुर (22.7%), एवं रजौली (20.8%) शामिल हैं।

(3) उच्च जनसंख्या वृद्धि वाले प्रखण्ड (25% से अधिक) – इसके अन्तर्गत नारदीगंज (26.1%), नवादा (26.7%), अकबरपुर (28.7%), हिसुआ (25.2%), नरहट (25.2%) एवं सिरदला (30.9%) शामिल हैं। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि कई प्रखण्डों में नगरीय क्षेत्र एवं उपक्षेत्र हैं जहाँ शिक्षा, स्वास्थ्य, परिवहन जैसे बुनियादी सुविधाओं में वृद्धि हुई है। अतः ये क्षेत्र जनाकर्षक हो गए हैं।

जनसंख्या वितरण एवं घनत्व

जनसंख्या का स्थानिक वितरण विश्व भर में जनसंख्या के फैलाव को दर्शाता है।¹¹ जनसंख्या वितरण से मनुष्य के धरातल पर स्थितिजन्य प्रारूप का बोध होता है। जबकि घनत्व शब्द मनुष्य और भूमि के बीच के संबंध को दर्शाता है। चूँकि मनुष्य और भूमि किसी क्षेत्र के दो मूलभूत तत्व हैं इसलिए किसी भी जनसंख्या अध्ययन में दोनों के बीच का अनुपात अत्यंत महत्वपूर्ण है। जनसंख्या घनत्व भूमि पर जनसंख्या के दबाव को दर्शाता है। यह स्थान में जनसंख्या के वितरण का विश्लेषण करने के लिए एक उपकरण प्रदान करता है।¹² घनत्व में यह मापा जाता है कि प्रति वर्ग कि. मी./ हेक्टेयर/ एकड़ के अनुपात में कितने मनुष्य

निवास कर रहे हैं। यह उस तरीके को व्यक्त करता है जिससे मनुष्य ने अपने अधीन भूमि का लाभ उठाया है (ट्रिवार्था 1957)¹³

तालिका संख्या- 03
नवादा जिला में जनसंख्या का वितरण एवं घनत्व (2011)

क्र० सं०	प्रखण्ड	क्षेत्रफल (वर्ग कि. मि.)	जसंख्या	प्रतिशत	घनत्व
(1)	(2)	(3)	(4)	(5)	(6)
01	नारदीगंज	104.43	124716	5.62	1194
02	नवादा	169.21	321491	14.49	1900
03	वारिसलीगंज	153.15	187123	8.43	1222
04	काशीचक	86.72	71886	3.24	829
05	पकरीबरौवा	201.01	183066	8.25	911
06	कौआकोल	322.56	143439	6.46	444
07	रोह	167.22	162507	7.32	972
08	गोविन्दपुर	153.53	95454	4.30	622
09	अकबरपुर	198.03	237292	10.69	1198
10	हिसुआ	113.83	141074	6.36	1239
11	नरहट	91.23	112042	5.05	1228
12	मेसकौर	117.50	94358	4.25	803
13	सिरदाला	246.85	178472	8.04	723
14	रजौली	368.73	166226	7.50	451
नवादा		2494.0	2219146	100	890

स्रोत:- डिस्ट्रिक्ट सेन्सस हैण्ड बुक, जिला नवादा : 2011 एवं शोध छात्र द्वारा गणन

तालिका संख्या - 03 से यह ज्ञात होता है कि नवादा जिला में जनसंख्या वितरण एवं घनत्व के दृष्टिकोण से काफी विषमता है। यह असमान वितरण यहाँ प्राप्त प्राकृतिक एवं मानवीय कारकों जैसे उपजाऊ भूमि, वन एवं पहाड़ी भूमि, जलवायु, जलापूर्ति, सिंचाई के कारक से प्राभावित होते हैं। जिले के उत्तरी भाग सघन बसा है जबकि दक्षिणी पहाड़ी भाग बहुत कम आबादी वाला है। सबसे ज्यादा जनसंख्या की हिस्सेदारी वाला प्रखण्ड नवादा है जो नगरीय विशेषता वाला प्रखण्ड है यहाँ नवादा जिला के कुल जनसंख्या का 14.49 प्रतिशत निवास करती है। जबकि जनघनत्व 1900 व्यक्ति प्रति वर्ग किलोमीटर है। जनसंख्या प्रतिशत के दृष्टिकोण से दूसरा स्थान अकबरपुर (10.69%) एवं तीसरा स्थान वारिसगंज (8.43%) है जबकि यहाँ जनघनत्व क्रमशः 1198 एवं 1222 व्यक्ति प्रति वर्ग किलोमीटर है। सबसे कम प्रतिशत वाला प्रखण्ड काशीचक (3.24%) एवं गोविन्दपुर (4.30%) जहाँ जनसंख्या घनत्व क्रमशः 829 एवं 622 व्यक्ति प्रति वर्ग किलोमीटर है। मोटे तौर पर जनसंख्या घनत्व की दृष्टि से नवादा जिले को निम्न तीन भागों में बाँटा जा सकता है।

(1.) अल्प जनसंख्या घनत्व वाले क्षेत्र - इसके अन्तर्गत वैसे प्रखण्डों को शामिल किया गया है जहाँ जनघनत्व 600 व्यक्ति प्रति वर्ग किलोमीटर से कम है। इसमें कौआकोल (444) एवं रजौली (451) प्रखण्ड शामिल हैं। इन प्रखण्डों की भूमि पहाड़ी, मिट्टी की उर्वरता कम होना, सिंचाई सुविधाओं का अभाव एवं औद्योगिक विकास नहीं होना आदि के कारण मानव निवास के लिए अनुपयुक्त है।

(2.) मध्यम जनसंख्या घनत्व वाले क्षेत्र - इसके अन्तर्गत वैसे क्षेत्र आते हैं जहाँ जनघनत्व 600 - 1200 व्यक्ति प्रति वर्ग किलोमीटर के मध्य है। इसमें नारदीगंज (1194), काशीचक (829), पकरीबरौवा (911), रोह (972), गोविन्दपुर (622), अकबरपुर (1198), मेसकौर (803) एवं सिरदाला (723) प्रखण्ड शामिल हैं।

(3.) अत्यधिक सघन जनसंख्या घनत्व वाले क्षेत्र - इसमें वैसे प्रखण्ड शामिल हैं जहाँ जनघनत्व 1200 व्यक्ति प्रति वर्ग किलोमीटर से अधिक है। इसके अन्तर्गत नवादा (1900), वारिसलीगंज (1222), हिसुआ (1239) एवं नरहट (1228) प्रखण्ड आते हैं। नरहट प्रखण्ड को छोड़कर शेष सभी प्रखण्ड नगरीय विशेषता वाले हैं। नगरीय केन्द्र आमतौर पर किसी क्षेत्र में जनसंख्या घनत्व को बढ़ा देते हैं।¹⁴

मानव – पर्यावरण अन्तर्क्रिया एवं पर्यावरणीय अवनयन

मानव एवं पर्यावरण अन्तर्क्रिया एक जटिल और बहुस्तरीय संबंध है जिसमें मानव और पर्यावरण एक दूसरे पर प्रभाव डालते हैं। निर्भरता, प्रभाव और अनुकूलन मानव और पर्यावरण के बीच अन्तर्क्रिया के प्रमुख पहलू हैं। मानव पर्यावरण से ही आवश्यक संसाधन प्राप्त करता है जैसे हवा, पानी, भोजन और आश्रय। अतः मानव पर्यावरण पर निर्भर है, लेकिन मानवीय गतिविधियों का पर्यावरण पर प्रभाव पड़ता है जैसे प्रदूषण, वनस्पति विनाश एवं जलवायु परिवर्तन मानव पर्यावरण के साथ अनुकूलन करता है और अपनी जीवनशैली में बदलाव करता है। मानव और पर्यावरणीय अन्तर्क्रिया के फलस्वरूप कई पर्यावरणीय समस्याएँ उत्पन्न होती हैं। जिन्हें पर्यावरणीय अवनयन कहा जाता है।

नवादा जिला कृषि पर आधारित जिला है। अतः कृषि उपज मिट्टी से निर्धारित होती है। जिला के विस्तृत भाग पर जलोढ़ मिट्टी की प्रधानता है। परंतु जिले के दक्षिणी भाग में मृदा क्षरण के प्रभाव दृष्टिगोचर होते हैं। इन भागों में भू – प्रवणता अधिक है। सबसे अधिक प्रभावित कौआकोल (5831 हे०), रजौली (8246 हे०) तथा गोविन्दपुर (3316 हे०) प्रखण्ड हैं। यहाँ भू-प्रवणता 8–25 प्रतिशत तक है। जिले के अधिकांश क्षेत्रों की मिट्टीयों में pH मूल्य 6.5 से 7.5 है। जो लगभग उदासीन अवस्था में हैं एवं कृषि के लिए उपयुक्त है।¹⁵

ज्ञातव्य है कि पारिस्थितिक संतुलन बनाये रखने के लिए किसी क्षेत्र के कुल क्षेत्रफल 33.33 प्रतिशत वन आवरण होना चाहिए। परंतु नवादा जिला में 25.6 प्रतिशत (2022 – 23) भाग पर वन आवरण है। विभिन्न वर्षों में जिले में वनों के आवरण में लगातार ह्रास हो रहा है। इस जिले में घने वनों का आभाव है। यहाँ मध्यम घने वन एवं खुले वन पाये जाते हैं। जहाँ 2021 में कुल वन क्षेत्र 516.9 वर्ग किलोमीटर था, वहीं 2023 में घटकर 506.3 वर्ग किलोमीटर रह गया है। मानवीय हस्तक्षेप के अतिरिक्त प्राकृतिक कारणों से भी वनों का विनाश हो रहा है। 2019 – 20 से 2023 – 24 तक 149 हेक्टेयर वन क्षेत्र जल चुका है।¹⁶ वनों में आगलगी का कारण मानवीय एवं प्राकृतिक दोनों हैं।

नवादा जिला में वायु मध्यम प्रदुषित है। यहाँ PM 2.5 वायु गुणवत्ता पूर्वानुमान 90 माइक्रोग्राम प्रति घन मीटर है।¹⁷

पर्यावरण योजना के अन्तर्गत कराये गए सर्वेक्षण में कुल 193 औद्योगिक इकाइयों को चिन्हित किया गया है जो वायु प्रदूषण के AQI में योगदान दे रहे हैं। AQI मुख्य रूप से 8 प्रदूषकों से मिलकर बनाया जाता है इसमें PM 10 एवं PM 2.5 नाइट्रोजन ऑक्साइड, सल्फर डाईऑक्साइड, कार्बन मोनोऑक्साइड, ओजोन, अमोनिया और लेड की मात्रा दर्शाया जाता है। जिले में संचालित ईट उद्योग, नगरों एवं बजारों में संचालित केरोसीन से चलने वाले जेनरेटर सेट, धान के अवशेषों (पराली) जलाने से भी वायु की गुणवत्ता खराब हो रही है। जिले में बेतहाशा बढ़ते वाहनों की संख्या भी वायु प्रदूषण में अहम योगदान दे रहा है। 2013 – 14 में जिले में निबंधित कुल वाहनों की संख्या 5672 थी जो बढ़कर 2016 –17 में 16395 एवं 2023 – 24 में 19491 हो गई।¹⁸ पेट्रोलियम उत्पाद के अंतर्गत 2014 – 15 से 2022 – 23 में जहाँ पेट्रोल 10.7 मीट्रिक टन, डीजल 42.2 मीट्रिक टन एवं रसोई गैस 22 मीट्रिक टन खपत हुआ वहीं सिर्फ 2023– 24 में क्रमशः 15.4 मीट्रिक टन 48.6 मीट्रिक टन एवं 27.7 मीट्रिक टन खपत हुआ।¹⁹ जिससे स्पष्ट होता है कि वाहन लगातार वायु प्रदूषण बढ़ा रहे हैं।

नवादा जिला में चार शहरी स्थानीय निकाय हैं जहाँ प्रतिदिन 60.86 टन ठोस अपशिष्ट कचरा निकलता है। सबसे ज्यादा नगर परिषद नवादा में 42 टन प्रतिदिन है। इसके पश्चात् हिसुआ नगर परिषद (8 टन प्रतिदिन), नगर परिषद वारिसलीगंज (6.8 टन प्रतिदिन), एवं नगर पंचायत रजौली (4.06 टन प्रतिदिन) ठोस अपशिष्ट कचरा उत्पन्न होता है। नगरों से प्लास्टिक अपशिष्ट प्रतिवर्ष 20.8 टन उत्पन्न होता है। जिसमें सिर्फ नवादा नगर परिषद से 20 टन प्रतिवर्ष निकलता है। इसके अलावे नगरों में निर्माण नवीनीकरण या विध्वंस की गतिविधियों के कारण जो मलवा उत्पन्न होता है। 2020 – 2021 में 2.5 मीट्रिक टन एवं 2021 – 22 में 5.5 मीट्रिक टन था। इस प्रकार के अपशिष्ट को सी एवं डी कंस्ट्रक्शन एंड डिमोलिशन) अपशिष्ट कहा जाता है।

निष्कर्ष – उपर्युक्त अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि मानव – पर्यावरण के मध्य मानवीय कारक ज्यादा प्रभावी है। जिसके कारण क्रमशः पर्यावरणीय अवनयन की समस्या लगातार गंभीर होती जा रही है। जिले में बड़े उद्योगों के अभाव में कुछ तत्वों पर प्रभाव कम पड़ा है परंतु तीव्र गति से बढ़ती जनसंख्या के कारण मानवों का प्रभाव, कृषि कार्यों, भूमि, जल स्रोतों एवं वनों पर दृष्टिगोचर हो रहे हैं। अध्ययन क्षेत्र में मित्रवत पर्यावरण विकास (इको फ्रेंडली डेवलपमेंट) की अपार संभावनाएँ हैं।

संदर्भ सूची

1. गौतम, अलका (2012) – संसाधन एवं पर्यावरण, रस्तोगी प्रकाशन, मेरठ पृ0 – 259
2. सिंह, सविन्द्र (2010) – पर्यावरण भूगोल, प्रयाग पुस्तक भवन, इलाहाबाद, मेरठ, पृ0 – 02
3. सिंह, आर0 एल0 (1971) – इण्डिया ए रिजनल स्टडी, NCSI पब्लिकेशन, पृ0 – 249
4. सिंह, आर0 पी0 एवं कुमार, अनिल (1970) – मोनोग्राफ ऑफ बिहार, भारती भवन, पटना, पृ0 – 175
5. लाल, डी0 एस0 (1996) – जलवायु विज्ञान, शारदा पुस्तक भवन, इलाहाबाद, पृ0 – 01
6. कुमार, संजय (2009) – पोपुलेशन प्रोबलम्स एण्ड लैंड यूज पैटर्न इन नवादा डिस्ट्रिक्ट, बिहार, अप्रकाशित शोधप्रबंध, भीम राव अम्बेडकर बिहार विवि0 मुजफ्फरपुर, पृ0 – 77
7. गौतम, अलका (2012) – संसाधन एवं पर्यावरण, रस्तोगी प्रकाशन, मेरठ, पृ0 – 203
8. चान्दना, आर0 सी0 (2002) – जनसंख्या भूगोल कल्याणी पब्लिशर्स, लुधियाना, पृ0 – 100
9. भूगोल परिभाषा कोष, हिन्दी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, 2001, पृ0 – 155
10. मौर्य, एस डी0 (2005) – जनसंख्या भूगोल, शारदा पुस्तक भवन, इलाहाबाद, पृ0 – 85
11. चान्दना, आर0 सी0 तथा सिधु, एम0 एस0 (1980) – इन्ट्रोडक्शन टु पोपुलेशन ज्योग्राफी, कल्याणी पब्लिशर्स, नई दिल्ली, पृ0 – 9-17
12. क्लार्क, जे0 (1972) – पोपुलेशन ज्योग्राफी, प्रेगमान प्रेस, ऑक्सफोर्ड, पृ0 – 29
13. द्विवार्था, जी0 टी0 एवं फिन्च, वी0 पी0 (1957) – इलेमेन्ट ऑफ ज्योग्राफी, न्यूयॉर्क, पृ0 – 50
14. भट्टाचार्या, आर0 – पोपुलेशन ज्योग्राफी ऑफ इण्डिया, श्री पब्लिसिंग हाउस, अजमेरी गेट, नई दिल्ली, पृ0 – 13
15. दैनिक, हिन्दुस्तान – फास्फोरस की अधिकता के कारण नवादा की मिट्टी कड़ी, खेती असान नहीं (समाचार), रविवार, 12 जून 2022
16. दैनिक, हिन्दुस्तान – पाँच सालों में जंगल की आग से जला चार हेक्टेयर वनक्षेत्र, गया, शुक्रवार, 7 मार्च 2025
17. www.airpollution.io
18. बिहार आर्थिक सर्वेक्षण, वित्त विभाग बिहार सरकार 2014-15, 2018-19 एवं 2024- 25
19. वही, 2024- 25, पृ0 – 26



मैथिली साहित्य मे आधुनिकताक अवधारणा

रीमा कुमारी*

‘मैथिली साहित्य मे आधुनिकताक अवधारणा’ विषय केँ क्रमशः तीन भाग मे विभाजित करैत एकर अध्ययन करबाक आवश्यकता अछि। एहि क्रम मे विभाजन एहि प्रकार होयत—

1. आधुनिकता आ आधुनिकतावाद, 2. मैथिली—साहित्य मे आधुनिकता, 3. आधुनिक मैथिली साहित्य आधुनिकता आ आधुनिकतावाद

आधुनिक, आधुनिकता आओर आधुनिकीकरण अथवा आधुनिकतावादक लेल अंग्रेजीक शब्द अछि— क्रमशः मॉडर्न (Modern), मॉडर्नीटी (Modernity), मॉडर्नाइजेशन (Modernization) आओर मॉडर्निज्म (Modernism)।

यूरोप मे सोलहम सदीक मध्य सँ उन्नैसम सदीक मध्य धरि ‘आधुनिक’ शब्दक प्रयोग ‘वर्तमान’ (Present) रूप मे कयल जाइत छल। पुनर्जागरणक बाद ‘आधुनिक’ शब्द कएकटा विशेषण केँ जन्म देलक। जेना— आधुनिकता, आधुनिकीकरण आदि। उन्नैसम शताब्दीक समाप्त होइत काल धरि आधुनिकता, सुधार, कार्यक्षमता, प्रगतिशीलता आदिक पर्याय बनि क’ प्रयुक्त होबय लागल। तेँ आधुनिकीकरण मे सामाजिक वर्गक सीमा केँ समाप्त होयब, ग्रामीण क्षेत्र सँ नगर—महानगर दिस प्रस्थान, सामाजिक गतिशीलता, शिक्षाक प्रसार, ज्ञान—विज्ञानक विस्तार, सामंती मूल्यक ह्रास आदि सम्मिलित अछि। आधुनिकीकरणक एहि प्रक्रिया केँ नगरीकरण आ नव अभिजात वर्ग (बुर्जुआ)क उदय रूप मे देखल जाइत अछि।

‘आधुनिकता’क सम्बन्ध आधुनिकीकरणक परिणामस्वरूप पुरातन एवं परम्परागत विचार आ मूल्य, धार्मिक विश्वास आ रुढ़िगत रीति—रिवाज सभक विरुद्ध नव आ वैज्ञानिक आविष्कार विचार नव मूल्य आदि सँ अछि। ‘आधुनिकीकरण’ शब्द ओहि समस्त परिवर्तन तथा प्रक्रिया सभक लेल कयल जाइत अछि जे पूँजीवादी व्यवस्था, पूँजीवादी अर्थव्यवस्थाक अंतर्गत औद्योगीकरण तथा यंत्रीकरणक कारण प्रकट भेल अछि।²

एहि परिवर्तनक परिणामस्वरूप साहित्य आ कलाक क्षेत्र मे तीव्रता सँ नव—नव चिन्तन आ नव—नव प्रयोग आबय लागल। ई आधुनिकता आ आधुनिकतावाद, साहित्य आ कलाक क्षेत्र मे एकटा महत्वपूर्ण आन्दोलन बनि क’ आयल। आधुनिकतावादक युग यूरोप मे उन्नैसम सदी मे शुरू भेल आ बीसम सदीक पूर्वार्द्ध धरि चलल। एहि क्रम मे दूटा आधुनिकतावाद घटित भेल। दुनू आधुनिकतावादक काल भिन्न—भिन्न छल। पहिल आधुनिकतावाद ओ छल जे अपन प्रारम्भ सँ बीसम शताब्दीक दू दशक धरि चलैत रहल। दोसर आधुनिकतावाद ओ छल जे बीसम शताब्दीक दू दशकक बाद प्रारम्भ भेल।

यद्यपि आधुनिकतावाद साहित्य, कला तथा अन्य सांस्कृतिक अभिव्यक्ति लेल बीसम शताब्दीक पूर्वार्द्ध मे प्रचलित रहल, मुदा वास्तव मे साहित्यिक प्रवृत्ति लेल कोनहु निश्चित सीमा निर्धारित नहि कयल जा सकैत अछि। कएकटा प्रवृत्ति कखनो—कखनो एक—दोसरा सँ जुड़ल रहैत, एकहि काल मे प्रवाहित होइत रहैत अछि। एकर अतिरिक्त, साहित्यिक नव प्रवृत्ति प्रस्फुटनक पूर्व कालक बीज रूप मे सेहो एहि मे विद्यमान रहैत अछि। ई प्रस्फुटन बाद मे आन्दोलनक आकार—प्रकार लैत अछि। यैह कारण अछि जे दुनियोक अनेक विचारक लोकनि कहैत छथि जे ‘आधुनिकतावाद’ कोनो अलग सँ साहित्यिक प्रवृत्ति आन्दोलन अथवा सिद्धान्त नहि अछि, अपितु ई एकटा स्वच्छन्दतावादक विस्तार अछि। पाश्चात्य जगत मे टी. एस. इलियटक काव्यकृति— ‘द वेस्टलैंड (The Westland, 1922) आ जेम्स ज्वायसक उपन्यास ‘यूलिसेस’ (Ulysses, 1922) केँ साहित्यिक आधुनिकतावादक मूल मानल जाइत अछि।

साहित्य आ समाज—विज्ञानक विचारक लोकनि अलग—अलग देश मे आधुनिकतावादक विकास लेल अलग—अलग समय निश्चित कयने छथि। हिन्दी मे आधुनिकतावादक उदय लेल अनेक प्रकारक मत प्रचलित अछि। पश्चिमी चिन्तन सँ प्रभावित लेखक—विचारक लोकनि उन्नैसम सदीक अन्तिम दशक सँ अर्थात् ‘भारतेन्दु युग’ सँ आधुनिकतावादक उदय मानैत छथि। किछु विचारक लोकनि आधुनिकतावादक सम्बन्ध प्रयोगवाद आ नवकविता सँ जोड़ैत छथि। किछु चिन्तक कहैत छथि जे हिन्दी मे आधुनिकतावादक जन्म द्वितीय विश्वयुद्धक अन्त मे उत्पन्न नव संवेदना आ नव चिन्तन—दृष्टिक संग भेल। एहि क्रम मे ई सेहो कहल गेल जे हिन्दी

* शोधार्थी, विष्वविद्यालय मैथिली विभाग, शैक्षणिक परिसर, भूना.म.वि., मधेपुरा (बिहार), मो.— 7903717464

साहित्य मे भारतेन्दु युग आधुनिकताक प्रवेश-द्वार अछि। भारत मे एहि आधुनिकताक अभिप्राय छल नव दृष्टिकोण, वैज्ञानिक आ तर्कयुक्त दृष्टिकोण, रूढ़िबद्धताक विरोध आदि। भारत मे आधुनिकतावाद पचासक दशक मे चर्चाक विषय बनल। ई तखन भेल जखन यूरोप मे विक्षुब्ध युवा (Angry Youngman) अमेरिका मे 'बीट्स'क कृति आ यूरोपक अस्तित्ववादी चिन्तक-लेखक ज्यॉ पॉल सात्र, अल्बेयर कामू आदिक प्रभाव हिन्दी लेखन आ आलोचना पर पड़ल।

'आधुनिकतावाद' सामाजिक समस्याक नहि अपितु व्यक्तिक स्वरूप आत्म-बोध आदि केँ प्रमुख मानैत अछि। प्रत्येक वस्तु, विचार आ संरचना पर व्यक्तिक वैयक्तिकताक छाप रहैत अछि। बाह्य जगत या तँ वस्तु सभक अथवा मनुष्यक मन-स्थितिक अभिव्यक्ति अछि अथवा ओकर प्रतीक अछि। ई 'आधुनिकतावाद' प्रत्येक विश्वास केँ आ प्रत्येक विचार केँ संशयक दृष्टि सँ देखैत अछि। तेँ एहि 'वाद' मे अनास्थाक स्वर मुखरित रहैत अछि। ई मूल्यक स्थिरता मे विश्वास नहि रखैत अछि। ई 'वाद' मानैत अछि जे मूल्य अनावश्यक अछि, अर्थहीन अछि, हानिकर अछि। ई मूल्यक संकटक प्रतिफल अछि जे लेखक अपन लेखकीय दायित्व केँ स्वीकार नहि करैत अछि।⁹

'आधुनिकतावाद' अतीत सँ विमुख भ' क' वर्तमानक शरण लैत अछि। ओ स्थायी अनुभवक तुलना मे क्षणिक अनुभव केँ वाणी दैत अछि। आधुनिकतावाद धर्म, प्रकृति परम्परा, नैतिकता, प्रतिबद्धता, आस्था मूल्य, विचालित विचार, विचालित वस्तुस्थिति, विचलित व्यवस्था आदि केँ चुनौती दैत अछि। ई आधुनिकतावाद सभ प्रकारक सामाजिक, नैतिक वैचारिक तथा यौन शोषणक विरोध मे टाढ़ होइत अछि। आधुनिकतावादक अनुसार साहित्यक कोनो सामाजिक प्रयोजन नहि छैक। आधुनिकतावादी समूह, साहित्य आ कलाक उपयोगिता केँ स्वीकार नहि करैत अछि। ओ समूह मानैत अछि जे साहित्यक सम्बन्ध बाह्य जगत सँ अथवा आम आदमी सँ नहि होइत अछि। ई साहित्य जनरुचिक अनुकूल नहि रचल जाइत अछि। तेँ ई साहित्य आम पाठक लेल उपयोगी नहि रहि जाइत अछि आ ने ओ सामान्य पाठक अथवा सामान्य जनताक प्रति जवाबदेह होइत अछि। नव सँ नव सृजन करबाक तीव्र इच्छाक कारण सँ आधुनिकतावादी लेखक-चिन्तक सभक प्रयोग अपनहि मे ध्येय आ मूल्य बनि जाइत अछि। प्रतिक्षण नव करी, किछु अपूर्व करी, विलक्षण अथवा अद्वितीय प्रस्तुत करी, एहि सभ पर विशेष ध्यान देल जाइत अछि। साहित्यक रूप शिल्प, शैली सभक नव-नव प्रयोग एहि साहित्यक आधुनिकतावाद'क विशिष्टता अछि। नव भाषा, नव संरचना, नव शब्दावली, पुरान शब्दावलीक प्रचलित शब्दक नव अर्थ ई सभ एहि साहित्यक लक्षण अछि। एहि क्रम मे एजरा पाउण्ड कहने छलाह जे- "नीक कविता 20 वर्ष पुरान शैली मे नहि लिखल जा सकैत अछि।"¹⁰

आधुनिकतावादी लेखक लोकनि चमत्कृत करय मे, सनसनी पसारय मे, उत्तेजना, आघात, आतंक आदि पसारय मे भाषा आ शैलीक उपयोग करैत छथि। आधुनिकतावादक प्रभाव सँ साहित्यक शास्त्रीय सौन्दर्य-बोध संदिग्ध भ' गेल। साहित्यक कृति सभ केँ पूर्णता मे नहि अपितु खंड-खंड मे देखबाक प्रवृत्ति बढ़ल। व्यक्ति भीड़ मे सेहो अपना केँ एसकर बुझय लागल। एकाकीपन आ अलगाव आधुनिकतावादी साहित्यक कृतिक मुख्य सरोकार अछि। ई साहित्य यथार्थक तुलना मे अनुभवक प्रामाणिकता केँ बेसी महत्व दैत अछि। एहि साहित्य मे व्यक्तिक जटिल मानसिकता आ निलक्षण संवेदना केँ प्रश्रय दैत अछि।

मैथिली साहित्य मे आधुनिकता

मैथिली साहित्य मे आधुनिकताक प्रवेश अंग्रेजी शासनक प्रभाव-विस्तारक एकटा सामान्य परिणाम छल। एहि सँ पूर्व जे मैथिली साहित्य मे रचना सभ होइत छल तकर मूल स्रोत परम्परागत संस्कृत, प्राकृत वा अपभ्रंश साहित्य छल। कवि लोकनिक व्यक्तिक क्षमता आ रुचिक अनुसार रचना मे परस्पर जे भिन्नता हो, मुदा ओहि समस्त रचनाक कथ्य मे ओही परम्पराक अभिव्यज्जना होइत छल जे विशाल पौराणिक साहित्य सँ अथवा लौकिक नीति-वचन सँ अथवा अध्यात्म-साधनारत साधु-महात्मा लोकनिक उद्गार सँ अनुप्राणित छल। विद्यापतिक आ हुनक उत्तरवर्ती कवि लोकनिक उद्गार, रचना अथवा ताहि सँ पूर्व ज्योतिरीश्वरक रचना अथवा बौद्ध चर्यापद वा डाक-घाघक वचन, एहि प्रत्येक रचना मे सामान्यतः ओही परम्पराक प्रकटीकरण भेल अछि। आधुनिकताक प्रचार-प्रसारक दृष्टि सँ मिथिलाक इतिहास मे उन्नैसम शताब्दीक उत्तरार्द्ध आ बीसम शताब्दीक पूर्वार्द्धक अवधि एकटा पैघ संक्रमण काल छल। सन् 1757 ई. मे पलासीक युद्धक मे बंगाल केँ पराजित होयबाक पछाति बंगाल मे अंग्रेजी शासन स्थापित भ' गेल। 1765 ई. मे ईस्ट इंडिया कम्पनीक हाथ मे बिहार, बंगाल आ उड़ीसाक दीवानी अधिकार आबि गेलैक। अंग्रेजक साम्राज्य बढ़हि लागल ओकर दमन-चक्र बढ़य लागल। 1857 ई. मे विदेशी शासनक विरोध मे भीषण विद्रोह भेलैक। तकर बाद सँ स्वाधीनता-संग्राम जोर पकड़लक। 1947 मे भारत स्वाधीन भ' गेल। एवक्रमे जे अंग्रेजी सत्ताक लगभग दू सय वर्षक शासन छल से

भारतवर्षक जन-जन केँ आ ओकर भाषा, साहित्य आ संस्कृति केँ बेस प्रभावित कयलक। भारत सहित मैथिलीओक साहित्य लेल ई समय कएक अर्थ मे आधुनिक होयबा मे पृष्ठभूमिक काज कयलक। एहि तथ्य केँ डॉ. अमरनाथ झा एहि प्रकारेँ रेखांकित कयने छथि—

“तेँ ई बात निर्विवाद रूप सँ कहल जाए सकैत अछि जे मिथिलाक आ समस्त भारतवर्षक आधुनिक युगक राजनीतिक, समाजिक ओ साहित्यिक, समस्त उपलब्धि मुख्य रूपेँ एहि सए वर्षक (अर्थात् 1857 सँ 1947 धरि) इतिहासक पृष्ठभूमि पर आधारित अछि। आधुनिक मैथिली साहित्यक विकासक सूत्र मुख्य रूपेँ तेँ एही पृष्ठभूमि मे अनुसन्धेय थिक।”⁵

1860 ई. मे दरभंगा महाराज महेश्वर सिंहक देहान्त भ’ गेलनि। हुनक मृत्यूपरांत अबोध राजकुमार लोकनिक कारण सँ एतहुक शासन-प्रशासनक सभटा भार अंग्रेज सरकार अपना हाथ मे ल’ लेलक। एहि क्रम मे अनेक प्रकारक कटौती सभ कयल गेल जे साहित्यिक-सांस्कृतिक रूपेँ हानिकारक छल। परिणामतः राज्याश्रयी पंडित आ गुणी लोकनि यत्र-तत्र छितराय लगलाह। सिपाही विद्रोहक तीनहि वर्ष बाद क्रमशः दरभंगा राज केँ अंग्रेज सरकार अपना अधीन करय लागल। महेश्वर सिंहक मृत्युक पश्चात् दरभंगा राजक प्रजा लोकनि अपना केँ पूर्णतः पराधीन अनुभव करय लगलाह। 1893 ई. क बाद तेँ ओ राजा-महाराजा लोकनि अंग्रेज सरकार लेल मात्र एकटा जमीन्दार रहि गेल छलाह।

अंग्रेज सरकार शांति ओ सुव्यवस्था कायम करबाक लेल यत्र-तत्र कचहरी खोललक यत्र-तत्र पुलिस-थाना खोललक। भारतीय न्याय-प्रक्रिया ओ व्यवस्था केँ पूर्णतः बदलि देलक। एहि परिस्थितिक संग मिथिलाक लोक सभ अपन प्रतिकार नहि क’ सकैत छल। तेँ हारे को हरिनाम केँ मानय लागल। भगवान-भगवतीक नाम आ गोहारि करय लागल। राम-कृष्णक उपासना करय लागल। एहने परिस्थिति मे रामचरित, कृष्णचरित, राम-कृष्ण-दुर्गा-शक्ति केन्द्रित पद सभ रचल जाय लागल। भक्त लोकनि सधुक्करी भाषा मे काव्य-रचना करय लगलाह।

अंग्रेज सरकार बहुत पहिनहि सँ यत्नशील छल जे एतहुक शिक्षा-व्यवस्था केँ सेहो बदलल जाय। परिणामतः 1800 ई. मे कोलकाता मे फोर्ट विलियम कॉलेजक स्थापना कयल गेल। एहि शिक्षा नीतिक अगुआ छलाह लॉर्ड मैकाले। लॉर्ड मैकालेक शिक्षा नीतिक प्रमुख पक्ष ई छल जे ओ भारतनिवासी केँ परम्परागत संस्कृत आ फारसी शिक्षा-पद्धति स्थान मे अंग्रेजी शिक्षा-पद्धति द्वारा शिक्षित करय चाहैत छल।⁶ परिणामस्वरूप एतय प्रचुर मात्रा मे अंग्रेजी शिक्षाक प्रचार-प्रसार भ’ गेल। एहि शिक्षा-पद्धति मे हिन्दी, उर्दू आदि केँ सेहो शिक्षाक विषय बनाओल गेल। प्रारम्भ मे मैथिली-भाषी केँ एहि शिक्षा-पद्धति मे स्थान नहि भेटि सकलैक। मुदा 1917-18 ई. मे कलकत्ता विश्वविद्यालय मे पाठ्यक्रम रूप मे एकरा मान्यता भेटलैक। पटना विश्वविद्यालय केँ स्थापना भेलैक। 1937 ई. मे एतय मैथिली केँ स्थान भेटलैक आ 1942 ई. सँ मेट्रिक परीक्षा होयब प्रारम्भ भ’ गेलैक। ग्रियर्सन जखन मधुबनी मे पदाधिकारी भ’ क’ अयलाह तेँ 1882 ई. मे मैथिली क्रिस्टोमैथी आ 1884 ई. मे ट्वेन्टी टू वैष्णव हिम्स नामक पोथी प्रकाशित भेल। एहि समय मे मैथिली भाषाक व्याकरण आ एकटा शब्दकोष सेहो बनाओल गेल। मनबोधक ‘कृष्णजन्म’ सेहो हुनके प्रयास सँ प्रकाशित भेल।

तात्कालिक मिथिला मे दू गोट परस्पर विरोधी विचारधारा प्रबलतापूर्वक प्रवाहित भ’ रहल छल। एकर किछु बिन्दु एहि प्रकारेँ अछि—

1. अंगरेजी सम्पर्कक प्रति स्वागत भावना,
2. प्राचीन रूढ़ि ओ परम्पराक प्रति विरोधी भावना,
3. अंग्रेजी सम्पर्कक प्रति विरोधी भावना
4. प्राचीन रूढ़ि ओ परम्पराक प्रति आसक्ति भावना

1887 ई.क बाद ब्रिटिश सरकार वैज्ञानिक अविष्कार सब सँ प्राप्त उपकरण, जेना— रेल, तार, डाक-व्यवस्था सभक प्रचार करब प्रारम्भ कयलक। परिणामस्वरूप प्रजावर्ग मे सुविधा होबय लगलैक। संगहि नव प्रकार सँ विज्ञानक प्रति आस्था जमय लगलैक, इंग्लैण्ड, जर्मनी आदि पाश्चात्य देशक प्रति सम्मम-भाव जाग्रत होबय लगलैक। अंगरेजी शिक्षाक समर्थन मे मैथिलीओ रचनाकार लोकनि आबय लगलाह। मिथिला मोद (वर्ष-7, उद्गार-70, श्रावण सन् 1320 साल, शाके 1833 तदनुसार 1912 ई.) मे एकटा पाठकीय पत्र छपल छल जाहि मे एकटा आग्रह कयल गेल छल। ओ आग्रह अछि— “नवीन अर्थकरी विधा, ‘अंग्रेजी शिक्षा’क प्रचार नहि होयत तेँ मैथिल लोकनि बंगाली, महाराष्ट्री आदि लोक सब सँ पछुआयले रहि जयताह।”⁸ ओहि पत्र सँ ईहो ज्ञात होइत अछि जे केओ व्यक्ति ‘मिथिला मिहिर’ मे लेख प्रकाशित कराय मैथिल महासभाक

प्रधानमंत्री पर आरोप लगओने छलाह जे संस्कृत विद्या केँ छोड़ि अंग्रेजी विद्याक पक्षपात हुनका द्वारा भ' रहल छल। तकरहि प्रत्युत्तर मे उपरोक्त पत्र छपल छल।

पूर्व मे सनातनी हिन्दू द्वारा समुद्र-यात्रा केँ निषिद्ध कहल जाइत छल। मुदा मिथिला मे पाश्चात्य शिक्षाक पक्षपाती महाराज लक्ष्मीश्वर सिंह एहि बन्धन केँ तोड़ि, इंग्लैंड जाय लेल इच्छुक भेलाह। बाद मे मैथिलीक रचनाकार लोकनि समुद्र-यात्रा प्रारम्भ कयलाह। महाराज कामेश्वर सिंह 1930 ई. मे राउण्ड टेबुल कॉन्फेरेन्स मे सम्मिलित होयबाक लेल समुद्रा-मार्ग सँ विलायत गेलाह आ मिथिला मे अंग्रेजी सम्पर्कक पथ केँ प्रशस्त कयलाह।⁹ प्राचीन परम्परा ओ प्राचीन रूढ़िक विरुद्ध सेहो मिथिला मे वैज्ञानिक भावना प्रबल होबय लागल। विविध सांस्कृतिक कृत्य सभ मे जे व्यर्थ खर्च कयल जाइत छल, तकरा निषेध करबाक उद्यम प्रारम्भ भेल। मधुश्रावणी मे कनियों केँ टेमी सँ दगबाक प्रथाक विरोध मे बात उठय लागल। बाल-विवाहक विरोध होबय लागल। पराश्रित रहबाक भावना केँ भर्त्सना होयब प्रारम्भ भेल। अपन श्रम करबाक प्रचलन केँ मुखरित होबय देल गेल। बाह्याडम्बरक प्रतिरोध होबय लागल। असत्य भाषण आ ताहि सँ प्राप्त धन केँ गर्हित कर्म कहल जाय लागल। परम्परागत मान्यता जे विकास मे बाधक बनैत छल तकर अवमानना प्रारम्भ भेल। अस्पृश्यताक त्याग कयल जाय लागल।

एकर संगहि अंग्रेजी सम्पर्कक प्रति विरोधी भावना सेहो पल्लवित-पुष्पित भ' रहल छल। अनेक नियम-कानून सभ बनल जाहि सँ हिन्दू समाज मर्माहत भ' रहल छल। जेना-

1. दी कास्ट डिजेबिलिटीज रिभूवल एक्ट (1850)
2. दी हिन्दू विडोज रीमैरेज एक्ट (1856)
3. दी नेटिभ कर्म्बट्स मैरेज डिजोल्यूशन एक्ट (1866)
4. दी हिन्दू इनहेरिटेन्स (रिभूवल ऑफ डिजेबिलिटीज) एक्ट (1928)
5. दी हिन्दू गेन्स ऑफ लर्निंग एक्ट (1930)
6. दी हिन्दू विमेन्स राइट टू प्रोपर्टी एक्ट (1937)¹⁰

एहि विधेयक सभ सँ हिन्दू-समाज क्रमशः कमजोर, विपन्न आ घायल होइत गेल। परिणामस्वरूप हिन्दू सम्मिलित परिवार व्यवस्थाक मूल आधार विश्वंखलित होबय लागल आ लोक-समाज मे साझी परिवारक भावनाक बलहीन होइत गेल। यद्यपि उक्त विधेयक सभ समाज-सुधारक नाम पर आनल जा रहल छल मुदा एहि सँ परम्परागत जीवन-मूल्य सभ डगमगाय लागल। जाति-परिवर्तन कयलहु सँ वंशक्रमागत सम्पत्ति पर अधिकार बनल रहबा मे कोनहु व्यवधान नहि भेला सँ वर्णाश्रम-व्यवस्था पूर्ववत् नहि रहि गेल छल। पुलिस आ कचहरीक आगमन सँ परम्परागत पंचायती-व्यवस्था मे ततेक शक्ति नहि रहि गेल छल। लोक-समाज मे व्यक्तिगत लाभक चलते पंचायती-व्यवस्थाक उपेक्षा होबय लागल छल।

एहि प्रकारे अंग्रेजी सम्पर्कक प्रचार-प्रसारक प्रति विरोधी भावनाक अभिव्यक्ति तत्कालीन पत्रिका सभ मे सेहो आबि रहल छल। एहि काल मे सांस्कृतिक आ राष्ट्रीय पुनरुत्थान भावना सेहो बलवती होबय लागल। महाराज लक्ष्मीश्वर सिंह एक विख्यात राष्ट्रवादी छलाह। भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन मे ओ कांग्रेस-पार्टी केँ अभूतपूर्व सहायता कयने छलाह। मिथिला रिशर्च सोसाइटीक स्थापना भेल। मिथिलाक पुरातत्वक विकास हेतु योजना सभ बनल। अनेक प्राचीन पाण्डुलिपि सभक जीर्णोद्धार भेल आ तकरा पुस्तकाकार कयल गेल। एहि कार्य मे कवीश्वर चन्दा झा अग्रणी भूमिकाक निर्वाह कयल। अपन गीत रचना मे कवीश्वर भक्ति-भावना सँ बेसी देश-दशाक चित्रण कयल। हिनकहि काल मे मैथिल हित साधन (1905 ई.) आ मिथिला मोद (1906 ई.) प्रकाशित होबय लागल। मिथिलाक इतिहासक लेखन लेल प्रयास होअय लागल। एहि सँ मिथिला मे पुनर्जागरणक परिवेश बनय लागल। मिथिलाक उन्नति केँ केन्द्र मे राखि अनेक साहित्यिक-सांस्कृतिक कृत्य सभ कयल गेल। जेना मुंशी रघुनन्दन दासक 'मिथिला नाटक', कलिधर्म प्रकाशिका (नाटक, श्री शशिनाथ झा), कविवर सीताराम झा लोकनि अपन पुस्तक ओ अन्य रचना सँ एहि भावना केँ उद्घाटित क' रहल छलाह। 1918 ई. मे कोलकाता विश्वविद्यालय मे मैथिलीक पढ़ौनी आरम्भ भेल। 1933 ई. मे बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय मे सेहो मैथिली विषयक पठन-पाठन प्रारम्भ भेल। 1929 ई. मे पटना विश्वविद्यालय मे महाराज कामेश्वर सिंह अपन स्वर्गीय पिता महाराज रमेश्वर सिंहक नाम पर 'मिथिलेश रमेश्वर सिंह मैथिली चैयर'क स्थापना भेल। पुनः मैथिली विकास निधिक स्थापना भेल। तखन पटना विश्वविद्यालय मे 1937 ई. मे मैथिली केँ स्थान भेटलैक। 1938 ई. मे एतय मैथिली अध्यापनक विधिवत् स्वीकृति भेटलैक। 1941 ई. मे आइ.ए. लेल मैथिलीक पाठ्यक्रम सेहो स्वीकृत भेल। 1949-50 ई. सँ मैथिली मे ऑनर्स आ एम.ए. पाठ्यक्रम स्वीकृत भेल।¹¹

आधुनिक मैथिली साहित्य

मैथिलीक आधुनिक साहित्य मे एकर जतेक विधा सभ अछि जेना— कविता, कथा, नाटक, उपन्यास, पत्रकारिता आदि, सभ विधा मे आधुनिक बोधक संचार भेल। एहि क्रम मे मनबोध, कवीश्वर चन्दा झा, भुवनेश्वर सिंह 'भुवन' लोकनिक प्रयास सराहनीय अछि। आधुनिक कालक सिंहद्वार पर सर्वप्रथम उपस्थित भेलाह कवीश्वर चन्दा झा, जे सामाजिक चेतनाक आधार पर अपन लोकवादी मुक्तक तथा प्रबन्धकाव्य, गद्यरचना, मैथिलीक देशज ओ ठेठ शब्दावली सँ युक्त जनभाषाक प्रयोग एवं अनेक शोधकार्य द्वारा नवयुगक सूत्रपात करैत मैथिली साहित्य मे नवीन क्षितिजक उद्घाटन कयल। हिनकहि समकालीन छलाह फतूर कवि, लालदास, गुणवन्त लालदास, जीवन झा, विन्ध्यनाथ झा लोकनि, जे आस्था, भक्ति, लोकवादी भासगीत, देश-दशा, मिथिला महिमा आ प्राचीन गौरवगाथा आदि सँ मैथिली साहित्यक आधुनिक चरित्र केँ स्थापित क' रहल छलाह। एही क्रम मे पं. श्यामानन्द झा, यदुनाथ झा 'यदुवर', भुवनेश्वर सिंह 'भुवन', पं. छेदी झा 'द्विजवर', कालीकुमार दास, मुशी रघुनन्दन दास, पुलकित लालदास मधुर, पं. सीताराम झा लोकनिक आगमन भेल जे नवीन छन्द, नव विन्यास, इतिवृत्तात्मक शैली आदि केँ मैथिली साहित्य मे प्रतिष्ठित कयल। तदुपरांत यात्रीजी, मधुपजी, किरणजी, चन्द्रभानु सिंह, उपेन्द्र ठाकुर 'मोहन', उपेन्द्रनाथ झा व्यास लोकनि अयलाह जे प्रकृतिक मानवीकरण, तदनुकूल विम्बविधान, तकर सरस चित्रण, नवीन भावबोध, उद्भावना, तकर कलात्मक अभिव्यक्ति, कल्पनाक रमणीय सूक्ष्मा आदिक संग काव्य-कर्म कयल।

मैथिली मे नवीन अभिव्यंजनाक संग, स्वरगंधा (कविता संग्रह : 1958) ल' क' राजकमल अयलाह। तदुपरांत रामकृष्ण झा 'किसुन' 'आत्मनेपद' रचना कयल। एहि कविताक स्वर छल कुत्सित स्वार्थ, घृणित अवसरवादिता, व्यापक भ्रष्टाचार, धातक अनैतिकता, दुष्टतापूर्ण मिथ्याचरण, मानवीय मूल्यक अवमूल्यन, निराशा, कुंठा, संग्रास आदि। तदुपरांत कीर्ति नारायण मिश्र, आरसी प्रसाद सिंह, चन्द्रनाथ मिश्र 'अमर', मार्कण्डेय प्रवासी, सुकांत, हरेकृष्ण झा, महाप्रकाश, लोकनिक काव्य रचना सँ मैथिलीक आधुनिक कविता अभूतपूर्व रूप सँ समृद्ध भेल।

मैथिलीक आधुनिक गद्यक विकास मे पत्र-पत्रिकाक योगदान अविस्मरणीय अछि। पत्र-पत्रिकाक आगमन सँ मैथिली साहित्यक आधुनिक काल केँ बेसी सम्बल आ समृद्धि प्राप्त भेलैक।

मैथिलीक प्रथम पत्रिका छल 'मैथिल हित साधन (1905, जयपुर)। एहि मे प्रमुखता सँ कवीश्वर चन्दा झा, पं. मधुसूदन झा, पं. रामभद्र झा, यदुनाथ झा 'यदुवर', कविवर जीवन झा लोकनि लिखलनि। तकर प्रसादात् मैथिली अपन आधुनिक साहित्य आ गद्यक रूप प्रकट कयलक। एकर उपरांत 'मिथिला मोद' (1905, काशी) प्रकाशित होबय लागल जे 1941 ई. तक छपल। एकर मुख्य रचनाकार लोकनि छलाह पं. अनूप मिश्र, पं. सीताराम झा, कांचीनाथ झा 'किरण', त्रिलोचन झा, रामचन्द्र मिश्र, कुशेश्वर कुमार, ज्योतिषाचार्य बलदेव मिश्र, म.म. उमेश मिश्र लोकनि। तदुपरांत मिथिला मिहिर (1909, दरभंगा) प्रकाशित होबय लागल। एकर सम्पादन मे सुमनजी आ बाद मे शेखरजी सन्नद्ध भेलाह। ई पत्रिका मैथिलीक सुदीर्घ काल धरि सेवा कयलक। एकर संगहि आन पत्रिका सभ सेहो आयल। जेना— मैथिल प्रभा, मैथिल प्रभाकर, श्री मैथिली, मिथिला, मिथिला पत्र आदि। मिथिला मिहिरक समय मे मैथिली लेखकक विराट समूह निर्मित भेल आ एक प्रकारेँ नवयुगक सूत्रपात भेल। तदुपरांत मैथिली साहित्य पत्र (1936), विभूति (1937), मैथिल बन्धु (1935), मैथिल युवक (1938), जीवन प्रभा (1940), मिथिला ज्योति (1948), स्वदेश (1948) आदि पत्रिका सभ अपना-अपना प्रयास सँ मैथिली साहित्य आ पत्रकारिताक आधुनिक स्वर केँ निखारि रहल छल। 1950 मे 'वैदेही' पत्रिका छपल। तदुपरांत मिथिला दर्शन (1970), मिथिला, पल्लव, अभिव्यंजन (1960), इजोत, आखर (1967), मैथिली प्रकाश (1968), मिथिला भारती (1968) आदि प्रकाशित होइत रहल। 70क दशक मे अपन आधुनिक त्वरा-तेवर केँ निखारैत, अग्निपत्र, रंगमंत, लोकमंच, सोनामाटि, माटिपानि आदि पत्रिका सभ आयल। तदुपरांत सन्निपात (1973), रचना, आरंभ, हालचाल, लोकवेद, कोसी कुसुम आदि आयल।

एहि क्रम मे उपन्यासक आगमन आ विकास सेहो मैथिलीक आधुनिक रूप केँ स्थापित कयलक। मैथिलीक उपन्यास-लेखन सर्वथा आधुनिक कालक उपज थिक। प्रारम्भ एकर होइत अछि 'सीमन्तिनी आख्यायिका' (म.म. परमेश्वर झा), मदनराज चरित (तुलसति सिंह), उदयन कथा (रमानाथ झा), उर्वशी (राजेश्वर झा), आदि उपन्यास सँ। 1914 ई.क बाद उपन्यास लेखन मे तीव्रता आयल। तकर बाद निर्दयी सासु (पं. जनार्दन झा 'जनसीदन') आयल। एहि समय मे रामेश्वर (1915 ई.) आ सुमति (1918 ई.) सेहो बेस चर्चित भेल। एहि समय उपन्यास अपन सामाजिक विषयक लेल महत्वपूर्ण मानल गेल। वर्ष 1929क बाद सँ उपन्यास लेखन मे एकटा परिवर्तन आओरो परिलक्षित होइत अछि, जाहि क्रम मे कन्यादान (हरिमोहन झा), द्विरागमन

(हरिमोहन झा), अगिलही (1935, कुमार गंगानन्द सिंह), भलमानुस (1944, योगानन्द झा), मधुश्रावणी (डॉ. शैलेन्द्र मोहन झा), नवतुरिया, बलचनमा (वैद्यनाथ मिश्र 'यात्री'), कुमार (उपेन्द्र नाथ झा 'व्यास'), बिहाड़ि पात पाथर (मायानन्द मिश्र, 1960), तर पट्टा ऊपर पट्टा (1961, सुधांशु 'शेखर' चौधरी), पृथ्वीपुत्र (ललित, 1965), भोरुकबा (धीरेन्द्र, 1965), खोता आ चिड़ै (मायानन्द मिश्र, 1965), आन्दोलन (राजकमल चौधरी, 1968), नैका बनजारा (1973), पवित्रा (योगानन्द झा, 1966), पनिपत (1969, जीवकांत), दू कुहेसक बाट (1968, जीवकांत), दू पत्र (व्यासजी, 1968), हमरा लग रहब (प्रभास कुमार चौधरी), दरिद्रछिम्मड़ि (सुधांशु 'शेखर' चौधरी) आदि उपन्यास सभ मैथिली साहित्यक आधुनिक विषय आ आधुनिक चेतना केँ स्पष्ट कयलक।

बीसम शताब्दीक दोसर दशक सँ मैथिलीक कथा अपन प्रभाव देखबय लागल। एहि क्रम मे मनुष्यक मोल (1920, कुमार गंगानन्द सिंह), बिहाड़ि, आदि कथा अपन आधुनिक रूप स्पष्ट कयलक। तदुपरांत हरिमोहन झाक कथा एकर विषय केँ नितान्त आधुनिक कयलक जाहि मे प्रणम्यदेवता, रंगशाला, चर्चरी आदि कथा-संग्रह विशेष रूप सँ चर्चित भेल। तदुपरांत अश्रुकण (मनमोहन झा), विडम्बना (व्यासजी), ललका पाग (राजकमल चौधरी), रमजानी (ललित) आदि कथा अपन सार्थक हस्तक्षेप प्रस्तुत कयलक। तकर बाद डॉ. रामदेव झा, धूमकेतु, प्रभास कुमार चौधरी, धीरेन्द्र गंगेश गुंजन, राजमोहन झा, जीवकांत, मंत्रेश्वर झा, साकेतानन्द, सुभाषचन्द्र यादव, महाप्रकाश, उषाकिरण खान, विभूति आनन्द, अशोक, शिवशंकर श्रीनिवास, लिलीरे, प्रदीप बिहारी, विभारानी, रमेश, ज्योत्सना चन्द्रम, सुस्मिता पाठक, श्याम दरिहरे प्रभृत कथाकार लोकनि अपन दायित्वपूर्ण कथा-लेखन सँ मैथिलीक आधुनिक कालक साहित्य केँ सुस्थाति कयल।

मैथिलीक आधुनिक नाटकक सेहो यह कालखंड छल जाहि मे पं. जीवन झा (सुन्दर संयोग, साम्बवती पुनर्जन्म), मुंशी रघुनन्दन दास (मिथिला नाटक), ईशनाथ झा (चीनीक लड्डु), किरणजी (विजेता विद्यपति), सुधांशु 'शेखर' चौधरी (भफाइत चाहक जिनगी, लगक दूरी, पहिल साँझ), नविकेता (एक छल राजा, नायकक नाम जीवन), मंत्रेश्वर झा (प्रायश्चित, किएक चुप अछि बसंती), महेन्द्र मलंगिया (ओकरा आंगनक बारहमासा, जुआयल कनकनी), अरविन्द अक्कू (रक्त, राज्याभिषेक, आगि धधकि रहल छै), कमल मोहन चुन्नु (नव घर उठे, चांगुर, ऑब्जेक्शन मी लॉर्ड), कुमार गगन (शपथग्रहण, गठबन्धन) आदि नाटक सभ अपन आधुनिक रूप-स्वरूप स्पष्ट कयलक।

मैथिली साहित्य मे साहित्यिक आलोचनाक आगमन सेहो आधुनिक कालहि मे भेल। एहि क्रम मे विविध प्रकारक आलोचना भेल। जेना- प्रभाववादी आलोचना, तुलनात्मक आलोचना, मनोविश्लेषणात्मक आलोचना, निर्णयात्मक आलोचना, ऐतिहासिक आलोचना, विवेचनात्मक आलोचना आदि।

18म-19म शताब्दी मे पाश्चात्य विद्वान द्वारा प्राच्य विद्याक अध्ययनक क्रम मे मैथिली साहित्यक आलोचनाक प्रारम्भ भेल। एहि क्रम मे मैथिली साहित्यक आलोचनाक प्रारम्भ भेल। एहि क्रम मे डॉ. ग्रियर्सन, नगेन्द्रनाथ गुप्त, म.म. हरप्रसाद शास्त्री, सुनीति कुमार चटर्जी, कवीश्वर चन्दा झा लोकनि विवेचना स्तरक आलोचना कार्य कयल। स्वतंत्रताक पश्चात् एहि कार्य मे तीव्रता आओल। एहि क्रम मे आचार्य रमानाथ झा, डॉ. जयकांत मिश्र, प्रो. जयदेव मिश्र, डॉ. जयधारी सिंह, दुर्गानाथ झा 'श्रीश', पं. गोविन्द झा, डॉ. बालगोविन्द झा, डॉ. लेखनाथ मिश्र, डॉ. रामदेव झा, कुलानन्द मिश्र, मोहन भारद्वाज, डॉ. भीमनाथ झा लोकनि मैथिलीक आलोचना साहित्य केँ आगू बढ़ाओल। एहि क्रम मे एहि आलोचक लोकनि द्वारा मैथिलीक कथा, कविता, उपन्यास, नाटक प्रभृति सभ विद्या केँ आलोचना कयल गेल। परिणामतः सभ साहित्यिक विद्या अपन गति-प्रगति आ आधुनिक रूप-स्वरूप केँ विकसित करय मे आलोचनाक महत्व केँ रेखांकित कयल। एकि क्रम मे शोधपरक आलोचना, भूमिका लेखन, पुस्तक समीक्षा, व्याख्या, विवेचना आदि स्तर सँ आलोचना केँ समृद्धि प्राप्त होइत रहलैक।

एतावत ई देखल अछि जे मैथिली साहित्यक आधुनिक काल केँ स्थापित, व्याख्यायित करबा मे मैथिलीक पत्रकारिताक प्रमुख योगदान अछि। एहि पत्रिका सभक माध्यम सँ आधुनिक भावधाराक कथा, कविता, नाटक, उपन्यास, निबन्ध, संस्मरण, रेखाचित्र, आदि विधा समृद्ध भेल। पत्रिकाक आगमन सँ मैथिलीक गद्य सेहो आयल। एहि गद्य केँ मैथिली साहित्यक आधुनिक कालक बहुमूल्य देन सेहो कहल गेल। कारण, एही गद्य केँ कथा, नाटक, उपन्यास, निबन्ध, संस्मरण आदि लिखल जाइत छल। मैथिलीक साहित्यिक लेखनक अधिकांश भाग, गद्य पर आश्रित रहैत छल। एवम प्रकारेँ मैथिली साहित्यक आधुनिककाल गद्यक काल छल जाहि प्रसादात् कथा-उपन्यासक अतिरिक्त मैथिली साहित्यक इतिहास लेखन सेहो सम्भव भेल जे कि आधुनिक मैथिली साहित्य लेल सर्वाधिक महत्वक कार्य सिद्ध भेल। एकि क्रम मे जे इतिहास लिखल गेल से सभ अछि- मैथिली साहित्यक इतिहास (डॉ. जयकांत मिश्र, 1988), मैथिली साहित्यक इतिहास (डॉ. दुर्गानाथ

झा 'श्रीश', 1968), मैथिली साहित्यक आलोचनात्मक इतिहास (डॉ. दिनेश कुमार झा, 1979), मैथिली साहित्यक इतिहास (मायानन्द मिश्र, 2014), आधुनिक मैथिली साहित्यक इतिहास (देवकांत झा, 2017) आदि।

एहि प्रकारे हम देखैत छी जे मैथिली साहित्य आधुनिक आ आधुनिकताक अवधारणा सँ अपन जे यात्रा प्रारम्भ कयलक से आइ बेस सुदृढ रूप मे विविध विधा मे दृष्टिगोचर भ रहल अछि। मैथिली साहित्य अपन एहि आधुनिक साहित्यक बल पर विभिन्न भारतीय भाषा-साहित्यक समक्ष बेस चर्चित, अर्चित आ प्रशंसित अछि।

संदर्भ-सूची-

1. पृ- 59, हिन्दी आलोचना की पारिभाषिक शब्दावली, डॉ. अमरनाथ, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2012
2. पृ- 60, ओतहि,
3. पृ- 60, ओतहि,
4. पृ- 61, ओतहि,
5. पृ- 3, आधुनिक मैथिली साहित्यक पृष्ठभूमि, डॉ. श्री अमरनाथ झा, अमृत प्रकाशन, दरभंगा, 1984.
6. पृ- 10, ओतहि,
7. पृ- 15, ओतहि,
8. पृ- 21, ओतहि,
9. पृ- 23, ओतहि,
10. पृ- 32-33, ओतहि,
11. पृ- 71, आधुनिक मैथिली साहित्यक पृष्ठभूमि, डॉ. श्री अमरनाथ झा, अमृत प्रकाशन, दरभंगा, 1984.



निराला कृत राम की शक्तिपूजा का अंतरानुशासनात्मक अध्ययन

चंद्रप्रकाश गोस्वामी*

1. शोध सार

सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' की कविता 'राम की शक्तिपूजा' हिंदी साहित्य की ऐसी कालजयी कृति है, जो मिथक, दर्शन, मनोविज्ञान, समाजशास्त्र और सौंदर्यशास्त्र-इन सभी अनुशासनों का अद्भुत संगम प्रस्तुत करती है। यह कविता केवल धार्मिक आख्यान नहीं, बल्कि आधुनिक मनुष्य के आंतरिक द्वंद्व, आत्मसंघर्ष और आत्मजागरण की प्रतीक है। निराला ने राम को देवता नहीं, बल्कि संघर्षशील मनुष्य के रूप में चित्रित किया है, जो अपनी दुर्बलता, संशय और पीड़ा से गुजरकर आत्मशक्ति की खोज करता है। 'नीलकमल' और 'नेत्र-बलिदान' जैसे प्रतीक आत्मबल, त्याग और आत्मज्ञान की यात्रा को रूपायित करते हैं। सामाजिक-राजनीतिक स्तर पर यह रचना स्वतंत्रता आंदोलन के युगीन संदर्भों को प्रतिबिंबित करती है, जहाँ शक्ति की आवश्यकता केवल धार्मिक नहीं, बल्कि राष्ट्रीय और नैतिक पुनर्जागरण का प्रतीक बन जाती है। दार्शनिक दृष्टि से निराला शक्ति को एक सार्वभौमिक चेतना के रूप में देखते हैं, जो मनुष्य के भीतर निहित है। सौंदर्यशास्त्रीय दृष्टि से यह कविता वीर, करुण और शांत रसों के संगम से काव्य को गहन भावनात्मक और बोद्धिक ऊँचाई प्रदान करती है। इस प्रकार 'राम की शक्तिपूजा' अंतरानुशासनात्मक दृष्टि से मानव चेतना के समग्र विकास और आत्मबल की खोज का शाश्वत दस्तावेज बन जाती है।

2. बीज शब्द : अंतरानुशासनात्मकता, मिथकीय प्रतीक, आत्मशक्ति और आत्मजागरण, मानवीकरण, मनोवैज्ञानिक द्वंद्व, सामाजिक-राजनीतिक चेतना, दार्शनिक दृष्टि, स्त्री-शक्ति और शक्ति-तत्त्व, सौंदर्यशास्त्रीय संवेदना, आत्मसंघर्ष और आत्मविजय।

3. मूल आलेख

रामचन्द्र शुक्ल को निराला में 'बहुवस्तुस्पर्शनी' प्रतिभा दिखती है। निराला एक समृद्ध लेखक हैं और उनकी 'राम की शक्तिपूजा' अंतरानुशासनात्मक दृष्टि से एक समृद्ध रचना है।

सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' हिंदी साहित्य के उन कवियों में से हैं, जिन्होंने आधुनिक भावनाओं को भारतीय परंपराओं के साथ जोड़कर एक अनूठा रचनात्मक योगदान दिया। उनकी कविता 'राम की शक्तिपूजा' छायावादी युग की एक ऐसी कृति है, जो गहरे विचारों और प्रतीकों से भरपूर है। इस कविता में रामायण के मिथक के जरिए आधुनिक मनुष्य के मानसिक, सामाजिक और आध्यात्मिक संघर्षों को दर्शाया गया है। यह सिर्फ धार्मिक या पौराणिक कथा नहीं, बल्कि मानव चेतना, शक्ति की अवधारणा, आंतरिक द्वंद्व और आत्मजागृति की गहन अभिव्यक्ति है। नंदकिशोर नवल के अनुसार "यह कविता 23 अक्टूबर, 1936 को रची गई या पूरी हुई, इलाहाबाद में, लीडर प्रेस के परिसर में स्थित वाचस्पति पाठक के घर पर, और वहीं से निकलने वाले दैनिक 'भारत' में अनुमानतः 26 अक्टूबर, 1936 को प्रकाशित हुई।"¹

'राम की शक्तिपूजा' को अगर अंतःअनुशासनात्मक नजरिए से देखें, तो यह साहित्य, मनोविज्ञान, समाजशास्त्र, दर्शनशास्त्र और धर्म जैसे विभिन्न क्षेत्रों का संगम है। निराला ने इस कविता में मानव अनुभवों की जटिल परतों को बड़ी कुशलता से समेटा हुआ है, जो इसे एक कालजयी रचना बनाता है।

मिथकीय और सांस्कृतिक अनुशासन की दृष्टि से देखें तो सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' की कविता 'राम की शक्तिपूजा' हिंदी साहित्य में मिथकीय और सांस्कृतिक अनुशासनों का एक अनूठा संगम है, जो भारतीय

* शोधार्थी, जामिया मिल्लिया इस्लामिया, नई दिल्ली, ई मेल - ig495910@gmail.com

परंपरा को आधुनिक संवेदनाओं के साथ जोड़कर मानव मन की गहराइयों को उजागर करती है। इस कविता का मूल आधार रामायण से लिया गया है, विशेष रूप से वह प्रसंग जहाँ राम और रावण के बीच युद्ध अपने चरम पर होता है। लेकिन निराला ने इस पारंपरिक मिथक को एक नई और आधुनिक दृष्टि प्रदान की है। उन्होंने राम को एक दैवीय अवतार के रूप में नहीं, बल्कि एक ऐसे संघर्षशील मनुष्य के रूप में चित्रित किया है, जो अपनी कमजोरियों, संदेहों और आंतरिक द्वंद्वों से जूझ रहा है। यह मानवीकरण राम को आधुनिक युग के व्यक्ति का प्रतीक बनाता है, जो जीवन की चुनौतियों में अपनी शक्ति और आत्मविश्वास की खोज करता है।

कविता का केंद्रीय क्षण तब आता है, जब राम युद्ध में पराजय के कगार पर खड़े होकर अपनी शक्ति को पुनर्जनन के लिए देवी दुर्गा की आराधना करते हैं। यहाँ मिथक केवल धार्मिक प्रतीक तक सीमित नहीं रहता, बल्कि यह आधुनिक मनुष्य के नैतिक, मानसिक और आध्यात्मिक संघर्षों का प्रतीक बन जाता है। राम का नीलकमलों से देवी की पूजा करना और अंतिम कमल की कमी को पूरा करने के लिए अपनी आँख अर्पित करने की तैयारी का प्रसंग इस कविता का सबसे गहन और प्रतीकात्मक हिस्सा है। यह प्रसंग शक्ति की खोज को बाहरी स्रोतों से हटाकर मानव के अंतर्मन की गहराइयों में ले जाता है। निराला इस दृश्य के माध्यम से यह संदेश देते हैं कि सच्ची शक्ति बाह्य चमत्कारों या संसाधनों में नहीं, बल्कि आत्मबल, संकल्प और आत्म-त्याग में निहित होती है। यह आत्म-बलिदान की भावना न केवल व्यक्तिगत साहस को दर्शाती है, बल्कि यह भी दिखाती है कि मानव अपने भीतर की शक्ति को पहचानकर ही विपरीत परिस्थितियों पर विजय प्राप्त कर सकता है। "शायद किसी स्तर पर संशयग्रस्त भी थे। अतः यह अनुमान करना असंगत न होगा कि 'राम की शक्तिपूजा' के संशयग्रस्त राम एक सीमा तक स्वयं निराला और उनकी पीढ़ी के युवकों का प्रतिनिधित्व करते हैं। उसी तरह राम-रावण युद्ध भी अपनी ऐतिहासिक पीठिका के बावजूद एक सीमा तक अंग्रेजों से स्वाधीनता, सीता का उद्धार करने के लिए लड़े जा रहे राजनीतिक समर का प्रतिनिधित्व करता है। यह भी स्मरणीय है कि 1931-33 का अहिंसात्मक आंदोलन विफल हो चुका था। क्रांतिकारी आंदोलन भी बिखर रहा था। समाजवाद के नारे लगने लगे थे, पर उनमें तेज़ी नहीं आई थी। अतः शक्ति की मौलिक कल्पना एक राष्ट्रीय आवश्यकता थी।"² राम के जीवन के डर भी हैं। 'रह-रह उठता जग जीवन में रावण-जय-भय';³

सांस्कृतिक दृष्टिकोण से, 'राम की शक्तिपूजा' भारतीय परंपरा और आधुनिकता के बीच एक सेतु का काम करती है। रामायण जैसे सांस्कृतिक मिथक को आधार बनाकर निराला ने भारतीय संस्कृति में गहरे निहित आत्म-चिंतन, शक्ति की अवधारणा और मानव की आंतरिक यात्रा को उजागर किया है। यह कविता केवल धार्मिक भावनाओं की अभिव्यक्ति नहीं है, बल्कि यह भारतीय सांस्कृतिक चेतना को आधुनिक संदर्भ में पुनर्परिभाषित करती है। राम का संघर्ष व्यक्तिगत होने के साथ-साथ सामाजिक और दार्शनिक स्तर पर भी प्रासंगिक है, जहाँ व्यक्ति को अपने भीतर की शक्ति को पहचानकर समाज और स्वयं के बीच संतुलन स्थापित करना होता है।

"फिर विश्व-विजय-भावना हृदय में आई भर,
वे आए याद दिव्य शर अगणित मंत्रपूत,—
फड़का पर नभ को उड़े सकल ज्यों देवदूत"⁴.

अंतःअनुशासनात्मक दृष्टि से, यह कविता साहित्य, मिथक, मनोविज्ञान, समाजशास्त्र और दर्शनशास्त्र का एक समृद्ध संगम है। मनोवैज्ञानिक स्तर पर, यह आत्म-संदेह और आत्म-विश्वास के बीच के तनाव को दर्शाती है, जो हर व्यक्ति के जीवन में किसी न किसी रूप में मौजूद होता है। समाजशास्त्रीय दृष्टि से, यह व्यक्ति और समाज के बीच के संबंधों, सामूहिक चेतना और सामाजिक दबावों की पड़ताल करती है। दार्शनिक स्तर पर, यह शक्ति, आत्मबोध और मानव जीवन के गहरे अर्थों की खोज से जुड़ी है। इस प्रकार, 'राम की शक्तिपूजा' न

केवल एक साहित्यिक कृति है, बल्कि एक ऐसी रचना है, जो मिथकीय और सांस्कृतिक ढांचे का उपयोग करके मानव अनुभवों की जटिल परतों को उजागर करती है और पाठकों को गहन चिंतन के लिए प्रेरित करती है।

मनोवैज्ञानिक अनुशासन की दृष्टि से ये समृद्ध रचना है। कविता की आत्मा मनुष्य के आंतरिक द्वंद्व और मानसिक संघर्ष में निहित है। राम युद्धभूमि में असमर्थ और व्यथित हैं; उन्हें अपनी दुर्बलता का आभास होता है। यह स्थिति हर मनुष्य की उस मानसिक दशा का प्रतीक है जब वह असफलता और निराशा के क्षण में स्वयं को खो देता है।

राम की साधना वस्तुतः उनके अवचेतन मन की यात्रा है। वे बाहर की शक्ति नहीं, अपने भीतर की ऊर्जा को जागृत करते हैं। यह मनोवैज्ञानिक दृष्टि निराला को आधुनिक कवियों की श्रेणी में लाती है। यहाँ फ्रायड के 'Id-Ego-Superego' के संघर्ष की झलक मिलती है। राम का आंतरिक विवेक (Ego) उनके कर्म और श्रद्धा को दिशा देता है।

युद्ध की विभीषिका के निराला के राम को जानकी से प्रथम भेंट याद आ रही है।" विदेह का,—प्रथम स्नेह का लतांतराल मिलन

नयनों का—नयनों से गोपन—प्रिय संभाषण,
पलकों का नव पलकों पर प्रथमोत्थान-पतन"⁵.

सामाजिक और राजनीतिक अनुशासन की दृष्टि से देखा जाए तो 'राम की शक्तिपूजा' कोई साधारण धार्मिक कथा का काव्य-रूप नहीं है। यह 1930 के दशक की उस आग में डूबी हुई है, जब भारत स्वाधीनता की जंग लड़ रहा था। निराला ने राम-रावण के युद्ध को एक गहरा सामाजिक-राजनीतिक प्रतीक बना दिया – राम बने पराधीन भारत की कमजोर जनता, और रावण बना अंग्रेजी हुकूमत का अन्यायी चेहरा।

राम का युद्ध-क्षेत्र में हार का सामना करना उस दौर की जनता की बेबसी है। उनकी दुर्गा-आराधना कोई धार्मिक अनुष्ठान नहीं, बल्कि आत्मशक्ति की पुकार है। नीलकमल चढ़ाना और आखिरी कमल के लिए आँख अर्पित करने की तैयारी – यह आत्म-बलिदान का वह क्षण है, जब परतंत्र भारत को समझ आता है कि आजादी कोई विदेशी दया नहीं, बल्कि अपने भीतर की जगी हुई चेतना है।

निराला ने 'राम की पराजय' को पराधीनता की उस मनोदशा का नाम दिया, जिसमें जनता खुद को कमजोर मान बैठी थी। लेकिन उनकी कविता यहीं नहीं रुकती – वह आगे बढ़कर कहती है: विजय बाहर से नहीं, भीतर से आती है। यह संदेश सीधे उस समय के स्वतंत्रता संग्राम से जुड़ता है, जब गांधी, नेहरू, सुभाष सब यही कह रहे थे – असली ताकत जनता के मन में है। वागीश शुक्ल के मुताबिक "वह एक समस्या से जूझती है, जिससे सभी कवितायें जूझती हैं; 'अन्याय' की समस्या। वह वही कविता बनती है जो सभी कविताएँ बनती हैं; एक ट्रेजिडी। मनुष्य एक अतिप्रश्न से टकराता है, "क्यों ऐसा है कि 'अन्याय जिधर हैं उधर शक्ति'?"। यह अतिप्रश्न है; इसे जब प्रश्न मान लेते हैं तो यह पेगनोत्तर पश्चिम में प्रसिद्ध problem of the evil बन जाता है। पेगन को इस प्रश्न का उत्तर तब तक नहीं मिलता जब तक वह प्रश्न के रथ को छोड़कर पैदल चलने के लिए तैयार नहीं होता। यह 'पैदल चलना' क्या है? यह वही है जो राम करते हैं, शक्तिपूजा।"⁶.

अवधेश प्रधान ने व्यक्तिगत और सामाजिक प्रतीकों की इस बहस को समेटते हुए लिखा कि इस "कविता में पराजय और परवशता, संशय और निराशा और पुरुषार्थ और संघर्ष का ऐसा गुंथा हुआ द्वंद्व उपस्थित है जिसमें राम अपने मिथकीय रूप की सीमा से मुक्त हो जाते हैं और उनके संघर्ष में एक ओर स्वयं निराला के जीवन संघर्ष की झलक मिलने लगती है तो दूसरी ओर उस युग के स्वाधीनता संग्राम की।"⁷ निराला लिखते हैं

"अप्रतिहत गरज रहा पीछे अंबुधि विशाल;
भूधर ज्यों ध्यान-मग्न; केवल जलती मशाल।

स्थिर राघवेंद्र को हिला रहा फिर-फिर संशय,
रह-रह उठता जग जीवन में रावण-जय-भय;"⁸

इस तरह 'राम की शक्तिपूजा' समाजशास्त्र और राजनीति की दृष्टि से एक संघर्ष और पुनर्जागरण की कविता बन जाती है – जो न केवल व्यक्तिगत आत्मबल की बात करती है, बल्कि सामूहिक चेतना को जगाकर परतंत्रता के खिलाफ विद्रोह का आह्वान करती है।"बिंध महोल्लास से बार-बार आकाश विकल।

वानर-वाहिनी खिन्न, लख निज-पति-चरण-चिह्न
चल रही शिविर की ओर स्थविर-दल ज्यों विभिन्न"⁹

सामूहिकता में ही शक्ति है, यह संकेत है कि समस्या का निवारण आपसी एकता के बल से किया जाएगा।"सुग्रीव, विभीषण, अन्य यूथपति यथासमय

आएँगे रक्षाहेतु जहाँ भी होगा भय।"¹⁰

दार्शनिक अनुशासन की दृष्टि से कविता में "शक्ति" की दार्शनिक अवधारणा गहन और बहुआयामी है। वे शक्ति को केवल देवी के रूप में नहीं, बल्कि एक सार्वभौमिक, गतिशील तत्त्व के रूप में प्रस्तुत करते हैं, जो ब्रह्म का सक्रिय स्वरूप है। यह शक्ति सृजन और विनाश की मूल शक्ति है, जो प्रकृति और आत्मा दोनों में संनादति है। अद्वैत वेदांत के अनुसार, यह शक्ति आत्मा के साथ अभिन्न है, और सांख्य-योग दर्शन में इसे प्रकृति के रूप में देखा जाता है, जो पुरुष (आत्मा) के साथ मिलकर मुक्ति का मार्ग प्रशस्त करती है।

राम की देवी-आराधना उनकी आत्मशक्ति का आवाहन है, जो आत्म-जागरण और आत्म-साक्षात्कार की प्रक्रिया को दर्शाता है। कविता का अंत, जहाँ राम के आँसुओं से कमल खिलता है, आत्मज्ञान और आंतरिक शुद्धता का प्रतीक है। कमल, जो कीचड़ में खिलकर भी निर्मल रहता है, आत्मा की उस अवस्था को दर्शाता है, जो संसार के बीच रहकर भी उससे अछूता रहता है। यह क्षण राम की आंतरिक विजय को रेखांकित करता है, जहाँ वे अपनी आत्मशक्ति के माध्यम से ईश्वर से एकाकार होकर सच्ची मुक्ति और विजय प्राप्त करते हैं।

"मातः, दशभुजा, विश्व-ज्योतिः, मैं हूँ आश्रित;
हो विदध शक्ति से है खल महिषासुर मर्दित,
जनरंजन-चरण-कमल-तल, धन्य सिंह गर्जित!
यह, यह मेरा प्रतीक, मातः, समझा इंगित;
मैं सिंह, इसी भाव से करूँगा अभिनंदित।"¹¹

यह कविता दर्शन और काव्य का सुंदर समन्वय है, जो मानव जीवन में आत्मशक्ति और आत्मज्ञान के महत्व को उजागर करती है।

कविता की साहित्यिक अनुशासन की बात करने पर यह बात भी ध्यान देना चाहिए कि 'राम की शक्तिपूजा' हिन्दी की दीर्घ कविताओं में एक मील का पत्थर मानी जाती है। निराला ने यहाँ छायावाद की भावुकता को बौद्धिक गहराई के साथ जोड़ा है। भाषा में संस्कृतनिष्ठ शब्दावली और प्रतीकात्मक बिम्बों का प्रयोग करते हुए उन्होंने कविता को दार्शनिक ऊँचाई दी है।

कविता का छंद, लय और बिंब-संरचना अत्यंत सशक्त है। 'नीलकमल', 'तीर', 'विजय-ध्वजा', 'धूल-धूसरित राम' जैसे प्रतीक कविता को न केवल सौंदर्य प्रदान करते हैं, बल्कि विचार को भी गहराई देते हैं। निराला की शैली में गंभीरता और आत्मान्वेषण दोनों एक साथ चलते हैं।

इस कविता में शक्ति को स्त्री रूप में प्रतिष्ठित किया गया है। देवी दुर्गा यहाँ न केवल पौराणिक सत्ता हैं, बल्कि स्त्री-ऊर्जा, सृजन और करुणा का प्रतीक हैं।

राम का स्त्री-शक्ति के प्रति झुकाव उस पितृसत्तात्मक मानसिकता को तोड़ता है जो शक्ति को केवल भौतिक रूप में देखती है। निराला ने यहाँ स्त्री-तत्त्व को उत्प्रेरक और प्रेरणास्रोत के रूप में चित्रित किया है। यह दृष्टि उन्हें स्त्री-अस्मिता और स्त्री-सशक्तिकरण के आधुनिक विमर्श से जोड़ती है।

सौंदर्यशास्त्रीय अनुशासन की नजर से देखें तो निराला की 'राम की शक्तिपूजा' में रसानुभूति और प्रतीक-सौंदर्य का संयोजन काव्य को एक गहन सौंदर्यात्मक और दार्शनिक आयाम प्रदान करता है। कविता में वीर-रस, करुण-रस और शांत-रस का संगम इसे भावनात्मक और आध्यात्मिक गहराई देता है।

राम की पराजय और उनकी साधना में करुण-रस का प्राधान्य है, जो उनके मानवीय दुख, आत्मसंघर्ष और असहायता को चित्रित करता है। यह रस पाठक के हृदय में संवेदना और सहानुभूति जगाता है। वहीं, देवी-सिद्धि और आत्मविजय के क्षणों में वीर-रस का उत्कर्ष होता है, जो राम की आंतरिक शक्ति, दृढ़ता और आत्मबल की विजय को रेखांकित करता है। यह वीर-रस पाठक में उत्साह और प्रेरणा का संचार करता है।

राम के लिए निराला कहते हैं

"धिक जीवन को जो पाता ही आया विरोध,

धिक साधन, जिसके लिए सदा ही किया शोध!"¹².

कविता का अंत, जहाँ राम के आँसुओं से कमल खिलता है, शांत-रस की ओर प्रवाह करता है। यह आत्मज्ञान और आंतरिक शांति का प्रतीक है, जो पाठक को गहन आत्मचिंतन और सौंदर्यात्मक अनुभूति की ओर ले जाता है। कमल का प्रतीक यहाँ शुद्धता, ज्ञान और मुक्ति का सौंदर्य दर्शाता है। अंत आशा से होती है, जीत की उम्मीद बनी हुए है।

"होगी जय, होगी जय, हे पुरुषोत्तम नवीन!"

कह महाशक्ति राम के वदन में हुई लीन!"¹³

इस प्रकार, 'राम की शक्तिपूजा' रसों के संगम और प्रतीकों के सौंदर्य के माध्यम से न केवल बौद्धिक चिंतन को प्रेरित करती है, बल्कि एक गहरे सौंदर्यात्मक अनुभव से भी समृद्ध करती है। यह कविता काव्य और दर्शन का अनुपम समन्वय है।

निराला की 'राम की शक्तिपूजा' अंतःअनुशासनात्मक दृष्टिकोण से एक असाधारण काव्य रचना है, जो विभिन्न ज्ञान-क्षेत्रों को एक सूत्र में पिरोकर साहित्य की समग्रता को उजागर करती है। यह कविता मिथक और इतिहास के ताने-बाने से बुनी गई है, जहाँ रामायण के मिथकीय संदर्भ और ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य एकाकार होकर कालजयी सत्य को रेखांकित करते हैं।

मनोविज्ञान और दर्शन के स्पंदन में यह कविता मानव-मन की गहराइयों को टटोलती है। राम की पराजय और उनकी शक्ति-आराधना मनोवैज्ञानिक संघर्ष और आत्मजागरण को दर्शाती है, जबकि अद्वैत वेदांत और सांख्य-योग दर्शन के तत्व इसके आध्यात्मिक आयाम को समृद्ध करते हैं। यहाँ शक्ति केवल देवी नहीं, बल्कि आत्मा की गतिशील चेतना है, जो सृजन और विनाश का मूल है।

समाजशास्त्र और राजनीति के संदर्भ में, कविता व्यक्तिगत और सामूहिक चेतना के बीच संवाद स्थापित करती है। राम का आत्मसंघर्ष व्यक्तिगत मुक्ति के साथ-साथ सामाजिक और नैतिक उत्तरदायित्व को भी प्रतिबिंबित करता है, जो एक आदर्श नेतृत्व का प्रतीक है। सौंदर्यशास्त्र की दृष्टि से, कविता अपने शिल्प, प्रतीकों (जैसे कमल) और रसों (वीर, करुण, शांत) के संगम से एक गहन सौंदर्यात्मक अनुभूति प्रदान करती है।

निराला ने 'राम की शक्तिपूजा' के माध्यम से साहित्य को केवल भावनाओं की अभिव्यक्ति तक सीमित नहीं रखा, बल्कि इसे मानव-चेतना के समग्र दर्पण के रूप में स्थापित किया। यह कविता मिथक, मनोविज्ञान, दर्शन, समाजशास्त्र और सौंदर्यशास्त्र के संनाद से मानव जीवन के गहन प्रश्नों को उजागर करती है, और इस प्रकार साहित्य की शक्ति को एक समन्वित, बहुआयामी अनुभव के रूप में प्रस्तुत करती है।

वर्तमान संदर्भ में 'राम की शक्तिपूजा' आत्मशक्ति, नैतिक साहस और आंतरिक जागरण का प्रतीक बनकर और भी प्रासंगिक हो उठती है। आज का मनुष्य भी बाहरी संघर्षों से अधिक अपने भीतर के संशय, भय और असंतुलन से जूझ रहा है। निराला के राम की तरह आज के व्यक्ति को भी अपनी शक्ति बाहर नहीं, अपने भीतर खोजनी होगी। यह कविता हमें सिखाती है कि सच्ची विजय बाह्य परिस्थितियों से नहीं, बल्कि आत्मविश्वास, एकता और आत्मजागृति से संभव है। निराला का संदेश आज भी समाज, राजनीति और मानवीय चेतना के पुनर्निर्माण में प्रेरक शक्ति के रूप में उपस्थित है।

संदर्भ सूची -

1. नंदकिशोर नवल, निराला होने का अर्थ और तीन लंबी कवितायें
2. विष्णुकांत शास्त्री, निराला: कवि छवि
3. <https://www.hindwi.org/kavita/ram-ki-shakti-puja-surykant-tripathi-nirala-kavita>
4. वहीं
5. वहीं,
6. वागीश शुक्ल, छंद छंद पर कुंकुम
7. अवधेश प्रधान, स्वाधीनता की अवधारणा और निराला।
8. <https://www.hindwi.org/kavita/ram-ki-shakti-puja-surykant-tripathi-nirala-kavita>
9. वहीं,
10. वहीं,
11. वहीं,
12. वहीं,
13. वहीं,



भारत में दलित इतिहास अतीत से वर्तमान

अजय कुमार*
संजय श्रीवास्तव**

सारांश

भारतीय समाज का विकास किसी निश्चित दिन, तारिक अथवा वर्ष में नहीं हुआ है, बल्कि समय के साथ इसका विकास हुआ है। दलित का इतिहास जानने के लिए आर्यों के आगमन से पूर्व की मानव सभ्यता और संस्कृति के वर्ण व्यवस्था एवं जाति व्यवस्था पर दृष्टिगत करना आवश्यक है। जाति व्यवस्था का आरम्भ वैदिक काल की अंतिम चरण (800-500 ईसा पूर्व) और उत्तर वैदिक काल (500-200 ईसा पूर्व) से जाना जाता है। भारत में जाति व्यवस्था की उत्पत्ति अनेक कारणों से मानी जाती है, जिसमें ब्राम्हणवाद की परम्परागत सिद्धान्त, प्रजातीय सिद्धान्त, जाति व्यवस्था, राजनीतिक, भौगोलिक, सामाजिक एवं धार्मिक कारणों का विशेष योगदान है।

महत्वपूर्ण शब्द: परम्परागत सिद्धान्त, ब्राम्हणवाद की परम्परा, जाति व्यवस्था

प्रस्तावना

दलित एक सामाजिक अवधारणा है, दलित शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग ज्योतिबा फूले ने समाज के गरीब, दीन-हीन लोगों के लिए किया था। यह एक मराठी भाषा का शब्द है। जिसका अर्थ कुचला हुआ, शोषित एवं वंचित है। कंवल भारती दलित शब्द को परिभाषित करते हुए लिखते हैं कि "दलित व्यक्ति वास्तव में वहीं हो सकता है जो सामाजिक तथा आर्थिक स्थिति से वंचित हो तथा जिस पर अस्पृश्यता का नियम लागू किया गया हो, तथा गंदे कर्म करने के लिए बाध्य किया गया हो, जिसे शिक्षा ग्रहण करने तथा स्वतन्त्र रूप से व्यवसाय करने से मना किया गया जिस पर सछूतों ने सामाजिक निर्योग्यताओं की संहिता लागू की वही और सिर्फ वही दलित है।"

भारतीय समाज में जाति वर्ग, लिंग के आधार पर सामाजिक दरारों की उत्पत्ति होती है। ऐसी दरारों ने भारतीय समाज के पूरे ताने-बाने को बदल दिया है जिसमें शोषित वर्ग, चाहे वह दलित हो, आदिवासी हो या महिलाएँ उत्पीड़न हो ये पारंपरिक ब्राम्हणवादी ढांचे द्वारा व्यवस्थित रूप से हाशिये पर धकेल दिया गया है। दलित वे लोग हैं जो सदियों से सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक रूप से शोषित होते रहे हैं। मनुष्यों के समाज से दूर गाँवों से बाहर रहते थे और निम्न स्तर के व्यवसाय पर निर्भर रह कर अछूत के रूप में रहकर अपना जीवन व्यतीत करते थे। यह शोषण हिन्दू समाज में सदियों पुरानी जातिगत परम्परा द्वारा किये गये भेदभाव के कारण था। दलित जिन्हें तथाकथित उच्च जातियों द्वारा क्रूरतापूर्वक शोषित किया गया। वर्णाश्रम सिद्धान्त से इन्हें बाहर रखा गया और स्वतन्त्रता पूर्व इन्हें भारत में बहिष्कृत किया गया। भारत की स्वतन्त्रता के बाद भी दलितों को सम्मान और समता के साथ जीवन जीने का अधिकार की अनुमति नहीं थी। समानता का यह विचार ही दलित आन्दोलन की शुरुआत थी। सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक जीवन के हर क्षेत्र में संसाधनों की कमी के कारण अत्यधिक उत्पीड़न और गिरावट की स्थिति पैदा हुई। दलितों की इस अपमानित स्थिति का मूल कारण जाति व्यवस्था थी एक तरफ जहाँ एक निश्चित समूह को भगवान का दर्जा माना जाता था। वही दूसरे समाज को उनके ठीक विपरीत जानवरों से भी बदतर माना जाता था। गेल ओमवेट ने अपनी पुस्तक 'दलित विज्ञान' में हिन्दू धर्म की तुलना ब्राम्हणवाद से की है। हिन्दू धर्म का निर्माण ब्राम्हणवाद के भेदभावपूर्ण कानूनों को एक ऐसे धर्म के तहत छिपाने के लिए किया गया है जिसे देश का धर्म माना जाए और इस तरह बिना किसी सवाल के उसका पालन किया जाये।

* शोध छात्र, मध्यकालीन एवं आधुनिक इतिहास विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज

** प्रोफेसर, मध्यकालीन एवं आधुनिक इतिहास विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज

बुद्ध काल में आर्यों ने संसाधनों पर एकाधिकार करने की कोशिश की। आर्थिक नियन्त्रण और सामाजिक स्थिति के लिए उन्होंने संसाधनों पर एकाधिकार कर लिया। सार्वभौमिक रूप से उत्पादन के संसाधन के रूप में भूमि और कुछ अन्य संसाधनों पर नियन्त्रण उच्च स्थिति के लिए माना जाता था। इस तरह से दलितों का वास्तविक शोषण किया गया। भूमि पर नियंत्रण के साथ दलितों ने अपनी आजीविका खो दी समाज की तीन मूलभूत आवश्यकताओं भोजन, कपड़ा और आवास से वंचित थे। भोजन से वंचित होकर वे अपना पेट बासी भोजन और मरे हुए जानवरों से भरते थे। जैसे मानों वे मनुष्य ही नहीं हो। अमिताभ द्वारा चित्रित कहानी 'कल्लइन दंगल की जहरीली रोटी' में बताया गया है कि दलितों को मरे हुए गाय के मांस की हड्डी के टुकड़ों के लिए भी संघर्ष करना पड़ता था। वे अपने शरीर को चिथड़ों के टुकड़ों से ढकते थे तथाकथित उच्च जाति के लोग जानवरों को बचा हुआ भोजन दे देते थे पर दलितों को नहीं। दलित की छाया पड़ने से ब्राम्हण अपवित्र हो जाते थे, लेकिन दलित महिलाओं द्वारा लाई गई लड़कियों से पकाये गये भोजन में कई बार उनकी कटी हुई उंगलियों का खून लग जाता था, जिससे उनका भोजन अपवित्र नहीं होता था। यह इस बात का संकेत है कि दलितों के खिलाफ बनाए गये नियम मूलतः उनके फायदे के लिए है।

दलितों के उत्पत्ति से ही उनकी शोषण की कहानी प्रारम्भ हो जाती है, उनको शिक्षा प्राप्त करने, मंदिरों में जाने, सार्वजनिक स्थलों पर घुमने, पूजा पाठ करने की सख्त मनाही थी। लेकिन स्वतन्त्रता के बाद दलित आन्दोलनों की प्रकृति से व्यापक बदलाव सामने आया। हमने मनुस्मृति को दमन कर नया संविधान बनाया जिसके द्वारा उदारवादी, लोकतांत्रिक और समतामूलक समाज बनाने का संकल्प लिया। संविधान के माध्यम से सभी व्यक्तियों को बिना किसी भेदभाव के सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, सांस्कृतिक और धार्मिक अधिकार प्रदान किया गया है तथा संविधान के माध्यम से सभी कुरीतियों का निषेध किया गया है। यहाँ तक की अनुच्छेद 17 के तहत अस्पृश्यता को अपराध की श्रेणी में रखा गया। उसके बाद दलितों से छुआछूत तथा उनका शोषण आज भी जारी है।

भारत में डॉ० भीमराव अम्बेडकर के बाद दलितों को राजनीतिक हक दिलाने का कार्य किया है तो वो मानवीय कांशीराम जी थे। बाबा साहब के विचारों का लोकप्रिय बनाने का काम तथा उसे प्रभावी ढंग से प्रभाव में लाने कार्य कांशीराम जी ने ही किया। उन्होंने जीवन भर अविवाहित रहने का निर्णय लेकर आजीवन भर दलितों के उत्थान में समर्पित किया।

आज के दौर में अब ऐसा हो गया है कि बिना दलित की राजनीति ही नहीं हो रही है। दलित वर्ग को अपनी तरफ आकर्षित करने के लिए अनेक प्रकार के लुभावने तरीके अपनाये जा रहे हैं। जहाँ भाजपा के प्रमुख नेता दलितों का पैर धो रहे तथा दलितों के घर जाकर भोजन करने का नाटक कर रहे हैं। वही कांग्रेसी दलितों का हितैसी बन रही है। साथ ही बसपा और आजाद समाज पार्टी तो खासकर उत्तर प्रदेश में दलित वोट पर तो अपना एकाधिकार ही समझती है। इस समय सभी दल के नेता बिना त्याग व मेहनत के ही अम्बेडकर बनना चाहते हैं, जो सम्भव नहीं है। आज के सभी नेता अपने आप को अम्बेडकर का अनुयायी कहते हैं लेकिन जब तक जरूरत है तभी तक नहीं तो जब जरूरत नहीं है तो वही अम्बेडकर कुछ लोगों को फैशन समझ में आने लगते हैं। ऐसे लोगों से दलित वर्ग को सावधान होने की जरूरत है। कोई भी नेता यहाँ तक की वर्तमान के सभी दलित हित के मामले में कोई राजनीतिक दल ईमानदार नहीं है। सभी की दिलचस्पी केवल दलित वोट में है। यही कारण है कि दलित वर्ग के लोग आज भी भेदभाव के शिकार हो रहे हैं।

निष्कर्ष

वर्तमान में कोई ऐसा नेता नहीं है जो दलितों को स्वीकार्य हो, जो दलितों का कल्याण कर सके, दलित वर्ग को चाहिए कि वो स्वयं एक संगठन बनाकर दलितों को जागरूक कर उनको शिक्षित व स्वावलम्बी बनायें। हालांकि राजनीतिक दल की महत्वाकांक्षी को दर किनार नहीं किया जा सकता लेकिन उनकी भी अपनी सीमाएं हैं।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

- शास्त्री रजनीकांत (2004), हिन्दू जाति का उत्थान और पतन, महल प्रकाशन, इलाहाबाद
- रघुवीर सिंह, डॉ० अम्बेडकर और दलित चेतना
- Dalit Movement in India, In the light of Four Dalit Literatures.
- उदृत- अनटचेवल (1996), वायसेज ऑफ दलित लिवरेशन मूवमेंट, नई दिल्ली पृ०79
- राम चंद्रिका (1957), ए प्लान फार हरिजन एण्ड अदर बैकवर्ण क्लासेज, नई दिल्ली
- आर्यावर्त (1955)
- चतुर्वेदी जी (1985), दलित शिक्षा, RBSA प्रकाशन, जयपुर
- डेकार्ड वी०एस० (1979), दलित आन्दोलन, हार्पर और रो न्यूयार्क
- अम्बेडकर वी०आर० (1946), शूद्र कौन थे ?, बाम्बे



स्वयं सहायता समूहों का नालंदा जिले की ग्रामीण महिलाओं के सामाजिक-आर्थिक बदलाव में योगदान

डॉ. राखी कुमारी*

सार—

यह अध्ययन नालंदा जिले की ग्रामीण महिलाओं के सामाजिक-आर्थिक जीवन में स्वयं सहायता समूहों की भूमिका को समझने के उद्देश्य से किया गया। बिहार सरकार की जीविका परियोजना के अंतर्गत गठित समूहों ने ग्रामीण महिलाओं के जीवन में गहरे परिवर्तन लाए हैं। इस अध्ययन में 160 ग्रामीण महिला सदस्यों पर आधारित प्राथमिक सर्वेक्षण किया गया, जिसमें यह पाया गया कि SHG की सदस्यता से महिलाओं की आय, बचत, निर्णय-निर्धारण क्षमता, स्वास्थ्य-जागरूकता और आत्म-विश्वास में उल्लेखनीय सुधार हुआ है। परिणामों से यह स्पष्ट होता है कि स्वयं सहायता समूह ग्रामीण क्षेत्र में महिला सशक्तिकरण का एक प्रभावी माध्यम हैं।

मुख्य शब्द— स्वयं सहायता समूह, महिला सशक्तिकरण, आर्थिक परिवर्तन, सामाजिक सहभागिता, ग्रामीण विकास, जीविका, नालंदा जिला।

भारत में महिलाओं का सामाजिक और आर्थिक स्वरूप ग्रामीण समाज में काफी हद तक पारंपरिक ढांचे और सामाजिक रूढ़ियों द्वारा प्रभावित रहा है। विशेषकर बिहार जैसे राज्यों में, ग्रामीण महिलाएँ घरेलू और कृषि कार्यों तक सीमित रही हैं, और उनके लिए आर्थिक निर्णय लेने या सामाजिक रूप से सक्रिय होने के अवसर बहुत कम रहे हैं। लंबे समय तक ग्रामीण महिलाओं की भागीदारी केवल पारिवारिक और घरेलू कार्यों तक सीमित रही, जिससे उनकी स्वतंत्रता और आत्मनिर्भरता पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा। ऐसे में महिलाओं के सामाजिक और आर्थिक सशक्तिकरण की दिशा में नीतिगत एवं संगठनात्मक प्रयास अत्यंत महत्वपूर्ण हैं।

1990 के दशक के बाद माइक्रो-फाइनेंस और स्वयं सहायता समूह (Self Help Group - SHG) जैसी अवधारणाओं ने ग्रामीण महिलाओं के जीवन में नए अवसर प्रस्तुत किए। स्वयं सहायता समूह छोटे समूह होते हैं, जिनमें 10-20 महिलाएँ मिलकर बचत करती हैं, सामूहिक ऋण लेती हैं और सामूहिक व्यवसाय या आय-सृजन गतिविधियों में भाग लेती हैं। यह मॉडल महिलाओं को न केवल वित्तीय स्वतंत्रता देता है, बल्कि सामाजिक सशक्तिकरण, नेतृत्व क्षमता और निर्णय-निर्धारण में भागीदारी को भी बढ़ावा देता है।

बिहार राज्य में जीविका परियोजना (Bihar Rural Livelihoods Project) ने SHG को बड़े पैमाने पर लागू किया है। जीविका का उद्देश्य ग्रामीण परिवारों को स्थायी आजीविका और महिलाओं को आर्थिक एवं सामाजिक रूप से सशक्त बनाना है। नालंदा जिला, जो सामाजिक और आर्थिक दृष्टि से मध्यम स्तर पर है, ग्रामीण महिलाओं के SHG सदस्य बनने के बाद हुए बदलाव का अध्ययन करने के लिए उपयुक्त क्षेत्र माना गया। नालंदा जिले में कृषि मुख्य पेशा है और अधिकांश परिवार सीमित संसाधनों पर निर्भर हैं। ऐसे में SHG के माध्यम से महिलाओं की आर्थिक गतिविधियों में भागीदारी उनके और उनके परिवारों के जीवन स्तर में सकारात्मक परिवर्तन ला सकती है।

स्वयं सहायता समूह के माध्यम से महिलाएँ नियमित रूप से बचत करती हैं और आपसी ऋण व्यवस्था के जरिए छोटे व्यवसाय, पशुपालन, बुनाई, घरेलू उद्योग आदि में निवेश करती हैं। इससे महिलाओं की आय में वृद्धि होती है, आर्थिक आत्मनिर्भरता बढ़ती है और पारिवारिक निर्णयों में उनकी भागीदारी सुनिश्चित होती है। इसके अतिरिक्त SHG महिलाओं के स्वास्थ्य, शिक्षा और सामाजिक जागरूकता को भी प्रभावित करता है। उदाहरण के लिए, समूह में होने वाली बैठकें महिलाओं को सरकारी योजनाओं, स्वास्थ्य सुविधाओं, पोषण, और स्वच्छता के बारे में शिक्षित करती हैं।

सामाजिक दृष्टि से, SHG महिलाओं में आत्मविश्वास, नेतृत्व क्षमता और सामाजिक पहचान को बढ़ावा देता है। महिलाएँ अब केवल परिवार तक सीमित नहीं रहतीं, बल्कि पंचायत और ग्रामसभा जैसी सार्वजनिक

* पी-एच0 डी0, अर्थशास्त्र विभाग, मगध विश्वविद्यालय, बोधगया Mob. No. : 99398 06530

बैठकों में भी सक्रिय भागीदारी करती हैं। यह सामाजिक सशक्तिकरण उनके अधिकारों, निर्णय लेने की क्षमता और सार्वजनिक मंचों पर अपनी आवाज उठाने की क्षमता में वृद्धि करता है।

अंतरराष्ट्रीय और राष्ट्रीय शोध ने भी यह सिद्ध किया है कि SHG आधारित मॉडल महिलाओं के जीवन में बहुआयामी सुधार लाता है। विश्व बैंक (2020) की रिपोर्ट के अनुसार, भारत में SHG महिलाओं को वित्तीय समावेशन और सामूहिक निर्णय-प्रक्रिया में शामिल करने का सबसे प्रभावी माध्यम है। इसी तरह, शर्मा (2022) ने बिहार के ग्रामीण क्षेत्रों में SHG से जुड़ी महिलाओं की आय, बचत और सामाजिक स्थिति में उल्लेखनीय सुधार का अध्ययन प्रस्तुत किया है।

हालांकि, SHG मॉडल की सफलता स्थानीय प्रशासन, प्रशिक्षण, बाजार-संपर्क और समूह प्रबंधन पर निर्भर करती है। बिहार जैसे राज्यों में, जहाँ शिक्षा और संसाधनों की कमी है, SHG महिलाओं के लिए आर्थिक और सामाजिक अवसर पैदा करता है, लेकिन इसे सतत समर्थन की आवश्यकता होती है। SHG के माध्यम से महिलाएँ न केवल अपनी आय बढ़ाती हैं, बल्कि समुदाय के विकास में भी योगदान देती हैं।

अतः नालंदा जिले में स्वयं सहायता समूहों के माध्यम से महिलाओं के सामाजिक और आर्थिक परिवर्तन का अध्ययन अत्यंत महत्वपूर्ण है। यह अध्ययन यह समझने में मदद करेगा कि SHG किस हद तक ग्रामीण महिलाओं को आर्थिक स्वतंत्रता, सामाजिक पहचान और सामूहिक निर्णय-प्रक्रिया में भागीदारी प्रदान करता है। अध्ययन के माध्यम से SHG की प्रभावशीलता, महिलाओं की जीवनशैली में आए बदलाव और संभावित सुधार के उपायों की पहचान की जाएगी।

इस प्रकार, यह शोध ग्रामीण महिलाओं की आर्थिक और सामाजिक सशक्तिकरण प्रक्रिया को समझने, SHG की भूमिका का विश्लेषण करने और नीतिगत सुधार के लिए सुझाव प्रदान करने के उद्देश्य से किया गया है।

अध्ययन प्रश्न-

1. क्या स्वयं सहायता समूहों की सदस्यता से महिलाओं की आय एवं बचत में वृद्धि हुई है?
2. क्या SHG से जुड़ने से महिलाओं की निर्णय-निर्धारण क्षमता और सामाजिक स्थिति में सुधार आया है?
3. क्या SHG सदस्य महिलाओं में स्वास्थ्य, स्वच्छता और शिक्षा के प्रति जागरूकता में बदलाव हुआ है?
4. क्या SHG से महिलाओं का आत्म-विश्वास और नेतृत्व-क्षमता बढ़ी है?

स्वयं सहायता समूह (SHG) महिलाओं के आर्थिक और सामाजिक सशक्तिकरण के लिए एक महत्वपूर्ण मंच के रूप में उभरे हैं। राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय शोधकर्ताओं ने इस पर व्यापक अध्ययन किया है और यह साबित किया है कि SHG का ग्रामीण महिलाओं के जीवन पर बहुआयामी प्रभाव पड़ता है। इस अध्ययन के संदर्भ में, पिछले शोधों और रिपोर्टों का अवलोकन आवश्यक है ताकि यह समझा जा सके कि SHG नालंदा जिले में महिलाओं के जीवन में किस प्रकार योगदान दे सकते हैं।¹

विश्व बैंक (2020) की रिपोर्ट "Unleashing the Power of Women Collectives in Bihar" में उल्लेख किया गया है कि जीविका परियोजना के अंतर्गत गठित SHG ने लगभग 10 लाख महिलाओं को वित्तीय समावेशन की मुख्यधारा में लाया। रिपोर्ट में यह भी बताया गया कि SHG की सदस्यता से महिलाओं ने बैंकिंग प्रणाली, बचत और ऋण की प्रक्रिया में आसानी से भाग लेना शुरू किया। इससे न केवल महिलाओं की वित्तीय स्वतंत्रता बढ़ी, बल्कि उन्हें निर्णय-निर्धारण में सक्रिय भागीदारी का अवसर भी मिला। रिपोर्ट में यह पाया गया कि समूह आधारित बचत और ऋण व्यवस्था ने महिलाओं को सामूहिक आर्थिक प्रबंधन की क्षमता प्रदान की, जिससे उनकी आत्म-विश्वास और सामाजिक स्थिति में सुधार हुआ।²

कुमारी एवं सिन्हा (2019) के अध्ययन "Socio-Economic Impact of SHG in Bihar" में ग्रामीण महिलाओं पर SHG के प्रभाव का विश्लेषण किया गया। शोध के निष्कर्षों से पता चला कि SHG में शामिल महिलाएँ अपनी आय बढ़ाने के साथ-साथ पारिवारिक और सामाजिक निर्णयों में अधिक सक्रिय हो गई हैं। अध्ययन में यह भी पाया गया कि समूह के भीतर महिलाओं की सामूहिक सहभागिता और सहयोग ने उन्हें व्यक्तिगत और सामूहिक दृष्टि से सशक्त बनाया। महिलाओं ने समूह के माध्यम से शिक्षा, स्वास्थ्य और सामाजिक जागरूकता के क्षेत्र में भी सक्रिय भूमिका निभाना शुरू किया। इस अध्ययन ने स्पष्ट किया कि 'SHG' न केवल आर्थिक लाभ प्रदान करता है, बल्कि महिलाओं के सामाजिक दृष्टिकोण, आत्म-विश्वास और नेतृत्व क्षमता में भी सुधार करता है।³

शर्मा (2022) के अनुसार, बिहार के ग्रामीण क्षेत्रों में SHG से जुड़ी महिलाओं की औसत आय में 18-25% तक की वृद्धि देखी गई। इसके अलावा, महिलाओं में आत्म-विश्वास और निर्णय-क्षमता के स्तर में

60 स्वयं सहायता समूहों का नालंदा जिले की ग्रामीण महिलाओं के सामाजिक-आर्थिक बदलाव में योगदान

भी महत्वपूर्ण सुधार हुआ। अध्ययन में यह भी उल्लेख किया गया कि SHG ने महिलाओं को अपने व्यवसाय, कृषि गतिविधियों और घरेलू उद्योगों में निवेश करने के लिए वित्तीय संसाधन प्रदान किए। परिणामस्वरूप, महिलाओं की पारिवारिक भूमिका केवल घरेलू सीमाओं तक सीमित नहीं रही, बल्कि उन्होंने समुदाय में अपनी उपस्थिति दर्ज कराना और सार्वजनिक मंचों पर भाग लेना भी शुरू किया। इस अध्ययन ने SHG के आर्थिक और सामाजिक प्रभाव की पुष्टि की और यह दिखाया कि SHG महिलाओं के आत्मनिर्भर बनने की दिशा में एक प्रभावी माध्यम है।⁴

WHO-NIPI रिपोर्ट (2021) में SHG आधारित स्वास्थ्य जागरूकता कार्यक्रमों का विश्लेषण किया गया। रिपोर्ट में पाया गया कि SHG के माध्यम से आयोजित स्वास्थ्य शिविरों और प्रशिक्षणों ने महिलाओं में मातृ एवं शिशु-स्वास्थ्य के प्रति जागरूकता बढ़ाई। महिलाओं ने गर्भावस्था में नियमित स्वास्थ्य जांच, टीकाकरण, पोषण और स्वच्छता के प्रति अधिक सक्रियता दिखाई। इस रिपोर्ट से यह स्पष्ट होता है कि SHG केवल आर्थिक लाभ के लिए नहीं, बल्कि सामाजिक स्वास्थ्य और जीवन गुणवत्ता सुधारने के लिए भी प्रभावी हैं। इस प्रकार, SHG महिलाओं को स्वास्थ्य संबंधी निर्णय लेने में सक्षम बनाते हैं, जिससे परिवार और समुदाय के स्तर पर सकारात्मक परिणाम उत्पन्न होते हैं।⁵

गोस्वामी (2023) के अध्ययन में SHG को सामाजिक समर्थन-जाल के रूप में प्रस्तुत किया गया है। अध्ययन के निष्कर्ष बताते हैं कि SHG न केवल आर्थिक अवसर प्रदान करता है, बल्कि महिलाओं को सामाजिक पहचान, सामूहिक निर्णय लेने की क्षमता और नेतृत्व कौशल भी प्रदान करता है। महिलाओं ने समूहों के माध्यम से अपने अधिकारों और कर्तव्यों के प्रति जागरूकता विकसित की। अध्ययन में यह भी उल्लेख किया गया कि SHG समूह महिलाओं के लिए आपसी सहयोग, अनुभव साझा करने और समस्याओं का सामूहिक समाधान निकालने का मंच बन गए हैं। यह सामाजिक नेटवर्क महिलाओं की सामाजिक स्थिति को मजबूत करता है और उन्हें पारिवारिक तथा सामुदायिक निर्णयों में सक्रिय भागीदारी का अवसर प्रदान करता है।⁶

साहित्य समीक्षा से स्पष्ट होता है कि SHG महिलाओं के जीवन पर बहुआयामी प्रभाव डालते हैं—आर्थिक, सामाजिक, स्वास्थ्य और नेतृत्व के क्षेत्रों में। SHG महिलाओं को न केवल आय सृजन और बचत के साधन प्रदान करता है, बल्कि उन्हें सामाजिक निर्णय-प्रक्रिया में सक्रिय बनाता है। इसके अलावा, स्वास्थ्य और शिक्षा जैसी महत्वपूर्ण सामाजिक समस्याओं में महिलाओं की भागीदारी को बढ़ावा देता है।⁷ यह अध्ययन नालंदा जिले के संदर्भ में SHG की प्रभावशीलता, महिलाओं के जीवन में हुए परिवर्तन और संभावित चुनौतियों को समझने में मार्गदर्शन प्रदान करेगा।

अतः, पिछले शोध और रिपोर्टों ने यह सिद्ध किया है कि SHG ग्रामीण महिलाओं के आर्थिक और सामाजिक सशक्तिकरण के लिए प्रभावी हैं और इन्हें सतत समर्थन, प्रशिक्षण और सरकारी सहयोग के माध्यम से और मजबूत किया जा सकता है।

अध्ययन के उद्देश्य—

1. नालंदा जिले की ग्रामीण महिलाओं की आर्थिक स्थिति पर SHG के प्रभाव का अध्ययन करना।
2. SHG के माध्यम से महिलाओं के सामाजिक-सशक्तिकरण की प्रक्रिया को समझना।
3. SHG सदस्य महिलाओं की जीवन-शैली, निर्णय-शक्ति, और स्वास्थ्य-व्यवहार में आए बदलावों का विश्लेषण करना।
4. SHG प्रणाली की प्रमुख चुनौतियों एवं उनके समाधान-उपायों की पहचान करना।

परिकल्पनाएँ—

H1: स्वयं सहायता समूहों से जुड़ी महिलाओं की आय और बचत में उल्लेखनीय वृद्धि हुई है।

H1: स्वयं सहायता समूहों सदस्य महिलाएँ सामाजिक निर्णयों में अधिक सक्रिय हैं।

H1: स्वयं सहायता समूहों सदस्य महिलाओं में स्वास्थ्य एवं शिक्षा-जागरूकता बढ़ी है।

कार्यविधि—

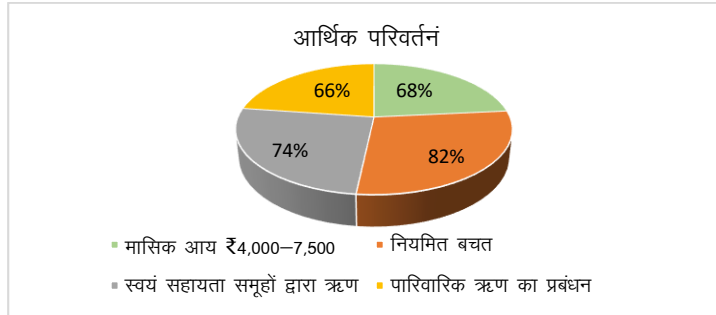
अध्ययन बिहार के नालंदा जिले के तीन प्रखंडों—हरनौत, बिहारशरीफ और नूरसरायकृमें किया गया। नमूना का आकार कुल 160 ग्रामीण महिलाओं का चयन किया गया, जो विभिन्न SHG समूहों की सक्रिय सदस्य थीं। नमूना का चयन स्तरीकृत यादृच्छिक पद्धति अपनाई गई ताकि प्रत्येक प्रखंड से प्रतिनिधित्व सुनिश्चित हो सके। वहीं डेटा संग्रहण हेतु प्राथमिक डेटा— संरचित प्रश्नावली, साक्षात्कार और फोकस-ग्रुप

चर्चा (FGD) द्वारा किया गया। जब कि द्वितीयक डेटा जीविका कार्यालय, सरकारी रिपोर्टें, और पूर्व शोध पत्र से है।

विश्लेषण- डेटा का सांख्यिकीय विश्लेषण प्रतिशत, पद्धति से किया गया। उपयुक्त तथ्यों का विश्लेषण विभिन्न सारणियों में किया जा रहा है-

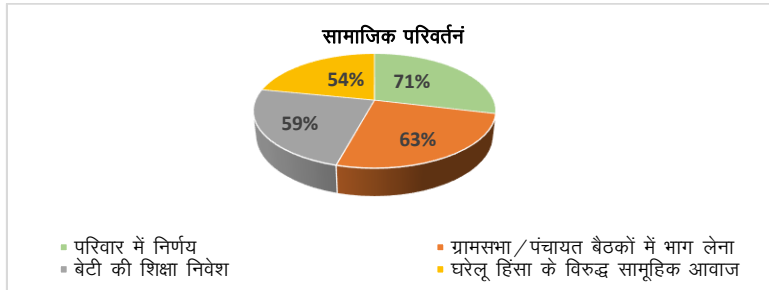
परिणाम-

(क) आर्थिक परिवर्तन-



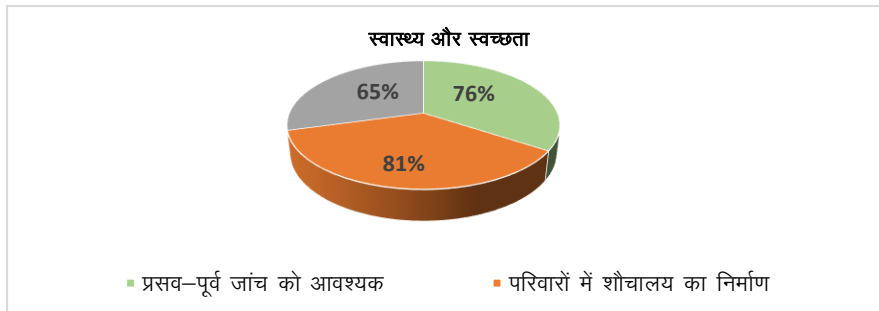
ग्राफ-1 से स्पष्ट है कि SHG महिलाओं की आर्थिक परिवर्तनों में 68.00% महिलाओं की औसत मासिक आय ₹4,000 से बढ़कर ₹7,500 हुई। 82.00% महिलाओं ने नियमित बचत प्रारंभ की। 74.00% महिलाओं ने SHG ऋण का उपयोग छोटे व्यापार, सब्जी उत्पादन, बकरी पालन आदि में किया। 66.00% महिलाएँ अब पारिवारिक ऋणों के प्रबंधन में योगदान दे रही हैं।

(ख) सामाजिक परिवर्तन-



ग्राफ-2 से स्पष्ट है कि SHG महिलाओं की सामाजिक परिवर्तन 71.00% महिलाएँ अब परिवार के निर्णयों में भाग लेती हैं। 63.00% महिलाएँ ग्रामसभा या पंचायत बैठकों में भाग लेती हैं। 59.00% महिलाओं ने बेटी की शिक्षा पर अधिक निवेश किया। 54.00% महिलाओं ने घरेलू हिंसा के विरुद्ध सामूहिक आवाज उठाई।

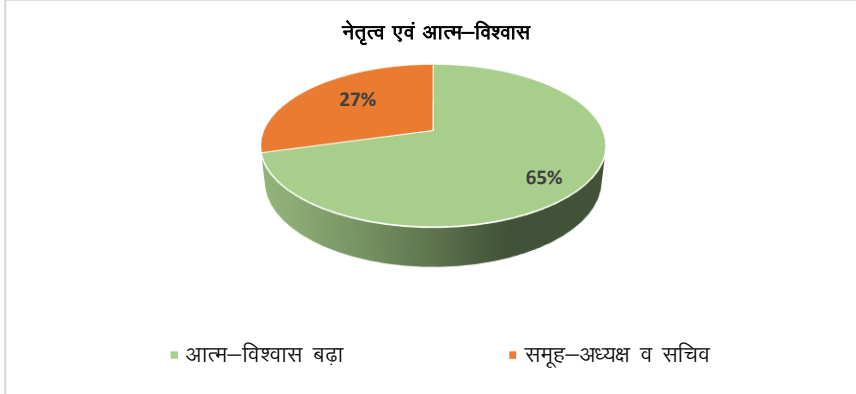
(ग) स्वास्थ्य और स्वच्छता-



ग्राफ-3 से स्पष्ट है कि SHG महिलाओं की स्वास्थ्य और स्वच्छता पर 76.00% महिलाओं ने प्रसव-पूर्व जांच को आवश्यक माना (पहले यह अनुपात 48.00% था)। 81.00% परिवारों में शौचालय का निर्माण हुआ। 65.00% महिलाओं ने पौष्टिक भोजन और टीकाकरण पर ध्यान देना शुरू किया।

62 स्वयं सहायता समूहों का नालंदा जिले की ग्रामीण महिलाओं के सामाजिक-आर्थिक बदलाव में योगदान

(घ) नेतृत्व एवं आत्म-विश्वास



ग्राफ-4 से स्पष्ट है कि SHG महिलाओं की नेतृत्व एवं आत्म-विश्वास पर 65.00% महिलाओं ने कहा कि वे अब सार्वजनिक मंचों पर बोलने में आत्म-विश्वास महसूस करती हैं। 27.00% महिलाएँ समूह-अध्यक्ष या सचिव जैसे पदों पर कार्यरत हैं।

चर्चा- नालंदा जिले के अध्ययन से स्पष्ट होता है कि स्वयं सहायता समूह ग्रामीण महिलाओं के जीवन में व्यापक परिवर्तन लाने में सक्षम हैं।

आर्थिक दृष्टि से इन समूहों ने महिलाओं को अपनी आय बढ़ाने, स्वयं का व्यवसाय करने, और वित्तीय संस्थानों से जुड़ने का अवसर दिया।

सामाजिक दृष्टि से, समूहों ने महिलाओं को निर्णय-प्रक्रिया में भाग लेने, सामुदायिक बैठकों में उपस्थिति दर्ज कराने और सामाजिक समस्याओं पर सामूहिक सोच विकसित करने की क्षमता दी।

महिलाओं में स्वास्थ्य-जागरूकता, शिक्षा-प्रेरणा और सामाजिक एकता में उल्लेखनीय सुधार देखा गया।

हालाँकि कुछ चुनौतियाँ भी सामने आईं, बाजार-संपर्क और उत्पाद विपणन की कमी। बैंकिंग-सुविधाओं में लिंग-पूर्वाग्रह। घरेलू कार्य-भार और सामाजिक-प्रतिबंध। समूह प्रबंधन में नेतृत्व प्रशिक्षण की सीमाएँ।

इन चुनौतियों के बावजूद, SHG महिलाओं के जीवन-स्तर में दीर्घकालिक सुधार की दिशा में एक सशक्त माध्यम साबित हुए हैं।

निष्कर्ष- स्वयं सहायता समूह नालंदा जिले की ग्रामीण महिलाओं के लिए आर्थिक स्वतंत्रता का आधार बने हैं। इन समूहों ने महिलाओं की आय, बचत, स्वास्थ्य और निर्णय-क्षमता में सुधार लाया है। साथ ही सामाजिक-मान्यता और आत्म-विश्वास में भी वृद्धि हुई है। अध्ययन से यह भी सिद्ध हुआ कि जब महिलाएँ सामूहिक रूप से संगठित होती हैं, तो वे केवल अपने परिवार नहीं बल्कि पूरे समुदाय के विकास में योगदान देती हैं। यह मॉडल ग्रामीण विकास नीति के लिए प्रेरणास्रोत है। यदि सरकार और स्थानीय संस्थाएँ मिलकर SHG को वित्तीय, तकनीकी और विपणन सहयोग प्रदान करें, तो महिला सशक्तिकरण की प्रक्रिया को और मजबूत किया जा सकता है।

सुझाव-

- प्रशिक्षण और क्षमता-विकास: SHG महिलाओं के लिए नियमित प्रबंधन और उद्यमिता-प्रशिक्षण की व्यवस्था।
- बाजार-संरचना- समूहों द्वारा उत्पादित वस्तुओं के विपणन हेतु राज्य-स्तरीय मंच तैयार किया जाए।
- डिजिटल वित्तीय साक्षरता- महिलाओं को ऑनलाइन बैंकिंग और डिजिटल भुगतान की जानकारी दी जाए।
- स्वास्थ्य और पोषण कार्यक्रम- SHG को स्वास्थ्य जागरूकता अभियानों से जोड़ा जाए।
- स्थानीय नेतृत्व को प्रोत्साहन- पंचायत स्तर पर महिला नेतृत्व को संस्थागत रूप दिया जाए।
- समन्वय नेटवर्क- SHG, NGO और सरकारी एजेंसियों के बीच समन्वय बढ़ाया जाए ताकि संसाधनों का प्रभावी उपयोग हो सके।

संदर्भ सूची

1. विश्व बैंक (2020), बिहार में महिलाओं के सहयोगी समूहों की शक्ति को उजागर करना, विश्व बैंक समूह।
2. बिहार सरकार, (2023), जीविका वार्षिक रिपोर्ट, ग्रामीण विकास विभाग, बिहार सरकार।
3. कुमारी, एस., और सिन्हा, आर, (2019), बिहार में SHG का सामाजिक-आर्थिक प्रभाव. इंडियन जर्नल ऑफ सोशल डेवलपमेंट, 19(4), 45-59।
4. शर्मा, पी (2022), SHG के माध्यम से महिलाओं का सशक्तिकरण- बिहार का अध्ययन, इंटरनेशनल जर्नल ऑफ मल्टीडिसिप्लिनरी रिसर्च एंड डेवलपमेंट, 12(2), 88-94।
5. विश्व स्वास्थ्य संगठन और राष्ट्रीय जनस्वास्थ्य संस्थान (2021), SHG आधारित स्वास्थ्य जागरूकता अभियानों का प्रभाव- बिहार में मातृ एवं शिशु स्वास्थ्य परिणाम. WHO-NIPI रिपोर्ट।
6. गोस्वामी, एन. (2023), SHG के माध्यम से ग्रामीण महिलाओं का सामूहिक सशक्तिकरण एक सामाजिक-आर्थिक विश्लेषण, इंडियन इकोनॉमिक रिव्यू, 45(3), 102-118।
7. बिहार ग्रामीण आजीविका संवर्धन सोसाइटी (2021), जीविका वार्षिक रिपोर्ट 2020-21, ग्रामीण बिहार में महिलाओं का सशक्तिकरण. पटना, बिहार।



गुप्तकालीन व्यापार, कृषि एवं उद्योग

मोहम्मद बेलाळ*

शोध सारांश :

प्रस्तुत अध्ययन "गुप्तकालीन व्यापार, कृषि, एवं उद्योग" का अध्ययन है। गुप्तकालीन भारतीय समाज बड़ा ही प्रगतिशील था। गुप्त शासकों द्वारा वैदिक संस्कृति का पुनरुत्थान किये जाने के कारण समाज में वैदिक धर्म की प्रधानता व्याप्त हो गई है। गुप्तकालीन भारत, 'प्राचीन भारत' और 'आधुनिक भारत' के बीच भारतीय उपमहाद्वीप के इतिहास की लंबी अवाधि को दर्शाता है। भारत का आर्थिक विकास सिंधु घाटी सभ्यता से आरम्भ माना जाता है। सिंधु घाटी सभ्यता की अर्थव्यवस्था मुख्यतः व्यापार, कृषि एवं उद्योग पर आधारित प्रतीत होती है जो यातायात में प्रगति के आधार पर समझी जा सकती है। लगभग 600 ई०पू० महाजनपदों ने विशेष रूप से चिह्नित सिक्कों को ढालना आरम्भ कर दिया था। इस समय को गहन व्यापारिक गतिविधि एवं नगरीय विकास के रूप में चिह्नित किया जाता है। 300 ई०पू० से मौर्य काल ने भारतीय उपमहाद्वीप का एकीकरण किया। राजनीतिक एकीकरण और सैन्य सुरक्षा ने कृषि उत्पादकता में वृद्धि के साथ-साथ व्यापार एवं वाणिज्य से सामान्य आर्थिक प्रणाली को बढ़ाव मिला।

विशिष्ट शब्द : व्यापार, कृषि, उद्योग, आर्थिक, शासनकाल, राजनीति, इत्यादि ।

प्रस्तावना : गुप्तकालीन भारत अत्यधिक उथल-पुथल, शासनकाल में परिवर्तन, प्रजा का पतन तथा अनेक कठिनाईयों से जूझ रहा था। विभिन्न देशों का आक्रमण जिनमें मुख्य रूप से अरबों का आक्रमण तथा उस समय की सामाजिक स्थिति, महमूद गज़नवी का आक्रमण, सल्तनतकाल, विजयनगर साम्राज्य तथा उस समय हिन्दू समाज की सामाजिक स्थिति तथा मुगलकाल तत्पश्चात् पश्चिमी शक्तियों का आगमन जिसमें प्रमुख रूप से पुर्तगाल, डच, अंग्रेज तथा फ्रांसीसी आदि ने भारत को झिंझोड़ कर रख दिया था। मुगलों के काल में विशेष रूप से अकबर का शासनकाल बहुत ही महत्वपूर्ण रहा है, जिसमें मुसलमानों तथा हिन्दुओं को समानता का अधिकार प्राप्त था तथा दोनों को धार्मिक स्वतंत्रता मिलने के अतिरिक्त उनमें पारस्परिक सम्बन्ध भी थे। किसी भी देश के इतिहास का वर्णन करने के लिये उस देश की सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक व सांस्कृतिक सभी दृष्टिकोण का अवलोकन करना अत्यंत आवश्यक होता है। गुप्तकालीन भारत में अपने बुनियादी जीविकोपार्जन के लिए लोग अनेक प्रकार के आर्थिक क्रियाकलाप करते थे। उनके कामों का दायरा खेती-बाड़ी से लेकर कारीगरी के उत्पादनों, व्यापार और वाणिज्य और इनसे संबंधित वित्तीय सेवाओं तक विस्तृत था।¹ इस अवाधि के दौरान इन कार्यकलापों में लगातार परिवर्तन होते रहे²। राज्य अपने अस्तित्व और विस्तार के लिए संसाधनों की पूर्ति विभिन्न प्रकार के करों के संग्रहण से करता था। इस पाठ में आप राज्य द्वारा संसाधनों के उत्पादन और उनके संचालन के विविध उपायों और व्यापार तथा वाणिज्य संबंधी गतिविधियों के बारे में पढ़ेंगे। कृषि उत्पादन के खंड में हम खेतों की जुताई की सीमा, फसल के पैटर्न (नमूने) और सिंचाई के साधनों और तरीकों के संबंध में चर्चा करेंगे। कराधान पद्धति के अधीन भूमि लगान तथा प्रशासन में मध्यस्थ जागीरदारों और किसानों पर बोझ के संबंध में विश्लेषण करेंगे। गैर-कृषि उत्पादों के खंड में आप विविध प्रकार के गुप्तकालीन भारतीय शिल्पों, और उनके निर्माण से जुड़ी तकनीक और उत्पादन की व्यवस्था इत्यादि के संबंध में जानकारी प्राप्त करेंगे। इसमें आप मध्यकालीन भारतीय व्यापार और वाणिज्य के विविध पहलुओं के बारे में भी गुप्तकाल के दौरान उत्पादित कुल मात्रा में कृषि उत्पादन का हिस्सा सर्वाधिक था। कृषि से होने वाली आय राज्य की आय का मुख्य स्रोत थी²। खेती-बाड़ी की सीमा खेती-बाड़ी की सीमा को इस संदर्भ में समझा जा सकता है कि इस संबंध में जाना जा सके कि कुल खेती योग्य उपलब्ध भूमि में से कितनी भूमि पर वास्तव में जुताई हो रही थी। गौर करने की बात यह है कि व्यक्ति के पास पर्याप्त भूमि थी, यानी जितनी भूमि पर किसान असल में जुताई कर रहे थे उससे कहीं ज़्यादा भूमि उपलब्ध थी।³ ऐसी स्थिति में खेती के विस्तार से उत्पादन को बढ़ाया जा सकता था, यानी नए-नए क्षेत्रों को कृषि भूमि के अधीन लाया जा सकता था⁴। उदाहरण के लिए, समकालीन संसाधनों से हमें सूचना मिली है कि मुगल

* शोध छात्र, इतिहास विभाग, मगध विश्वविद्यालय, बोधगया

सल्तनत की अवधि के दौरान गंगा-यमुना की उपजाऊ भूमि के विशाल भूमि-क्षेत्र, वनों और घास के मैदानों से ढके हुए थे। मुगल काल में भी पर्याप्त भूमि लोगों के पास उपलब्ध थी।⁵ इसलिए इस कालावधि के शासक इस नीति पर डटे रहे कि अब तक जिन क्षेत्रों को खेती की भूमि के अधीन नहीं लाया गया है, उन क्षेत्रों तक कृषि भूमि का विस्तार किए जाए। जनजातीय, पिछड़े और दूर-दराज के क्षेत्रों में भी खेती-बाड़ी शुरू की गई। वनों की कटाई की गई और कृषि योग्य व्यर्थ पड़ी (परती) भूमि को खेती योग्य भूमि में परिवर्तित किए गये। सल्तनत से मुगलकाल की अवधि के दौरान बहुत अधिक मात्रा में कृषि की सीमा का विस्तार हुआ। मुगल काल तक आते-आते उनके साम्राज्य के लगभग सम्पूर्ण भाग में खेती-बाड़ी होने लगी थी, यद्यपि मुगलों के कृषि कार्यों से जुड़ी आबादी (किसानों) की वास्तविक जरूरतों से अभी भी काफी ज़्यादा भूमि उपलब्ध थी।⁶ अकबर की तुलना में औरंगजेब के शासनकाल में कृषि उत्पादनों में अत्यधिक वृद्धि हुई। बिहार, अवध और बंगाल के कुछ क्षेत्रों में कृषि विस्तार का श्रेय वनों की कटाई को जाता है जबकि पंजाब और सिंध में इसका कारण था नहरों का जाल बिछाना। यद्यपि अधिकांश लोगों का व्यवसाय कृषि था, परन्तु देश के ग्रामीण और शहरी दोनों क्षेत्रों में काफी बड़े स्तर पर अनेक प्रकार के शिल्प कार्य भी अस्तित्व में थे।

इन शिल्प कार्यों में शामिल थे, कपड़ा बुनना, मिट्टी के बर्तन बनाना, रंगाई, खांडसारी (चीनी बनाना), धातु कार्य, कागज बनाना, लकड़ी का काम, शस्त्र और कवच का निर्माण, पोत-निर्माण, रसायनों से जुड़े कार्य इत्यादि। प्रमुख शिल्प कार्य बुने हुए कपड़ों का उत्पादन, गुप्तकालीन भारत में बहुत व्यापक रूप से किए जाने वाला कारीगरी का काम था। भारतीय बुनकर चार प्रकार के कपड़ों का निर्माण करते थे⁷ – सूती, रेशमी, ऊनी और मिश्रित मोटा सूती कपड़ा बंगाल, लाहौर, आगरा, अवध, पटना, फतेहपुर सीकरी और गुजरात इत्यादि सूती कपड़ा उत्पादन के प्रमुख केन्द्र थे। कपड़ों के निर्माण के अतिरिक्त बंगाल और गुजरात बुने गए कपड़ों की वस्तुओं के बहुत प्रसिद्ध निर्यातक थे। इस अवधि के दौरान रंगाई और ब्लीचिंग (विरंजन) की कला, पृथक रूप में एक विशिष्ट कारीगरी के रूप में उभर कर आई। भडूच, अहमदाबाद, सूरत, पटना, सोनारगांव, ढाका, मसोलीपट्टम इत्यादि प्रमुख रंगाई और ब्लीचिंग (विरंजन) के केन्द्र थे।

उद्योग एवं शिल्प –

- गुप्तकालीन उद्योगों एवं शिल्पों में जहां एक ओर विशेषज्ञता का विकास दिखाई देता है, वहीं दूसरी ओर प्रौद्योगिकी या तकनीकी कौशल में अद्भुत प्रगति दृष्टिगोचर होती है।
- इस काल में धातु-शिल्प, वस्त्र-निर्माण, शिल्प साथ ही पाषाण-शिल्प, हाथीदाँत का काम आदि उद्योगों में विशेष प्रगति हुई। आभूषण, हाथीदाँत, धातुकर्म, बर्तन, जहाज उद्योग विकसित हुए।
- गुप्तकाल में धातु-शिल्प के क्षेत्र में विशेष उन्नति हुई। इस काल में धातुविज्ञान के क्षेत्र में हुई अद्भुत प्रगति का एक भव्य उदाहरण मैहरोली (दिल्ली) का लौह-स्तम्भ है जो इतनी शताब्दियों बाद भी बिना जंग लगे हुए, अक्षत खड़ा है।
- गुप्तकालीन ताम्रशिल्प का एक श्रेष्ठ उदाहरण तांबे की विशालकाय बुद्ध की मूर्ति है जो सुलतानगंज (जिला भागलपुर, बिहार) से मिली थी और इस समय इंग्लैण्ड के बर्मिंघम के संग्रहालय में है।
- गुप्तकालीन धातुकर्म का सर्वोत्तम रूप इस काल के सिक्कों में देखा जा सकता है। इस काल के ताम्रपत्रों पर लगी हुई मुहरें भी धातुशिल्प की श्रेष्ठ उदाहरण हैं।
- गुप्तकाल की सहस्त्रों स्वर्णमुद्रायें प्राप्त हुई हैं, जो विशुद्ध भी हैं तथा कलात्मक भी। गुप्तकाल की आर्थिक सम्पन्नता, कलात्मक सौन्दर्यसृष्टि तथा तकनीकी कौशल का वे ज्वलंत उदाहरण हैं।
- गुप्त सम्राटों में सर्वप्रथम चन्द्रगुप्त प्रथम ने सिक्के प्रचलित किये। चन्द्रगुप्त द्वितीय के समय सोने के अतिरिक्त चांदी एवं तांबे का भी मुद्राओं के लिए प्रयोग किया गया। कुमारगुप्त प्रथम ने सर्वाधिक सिक्कों का प्रचलन किया। इन स्वर्ण मुद्राओं को अभिलेखों में 'दीनार' कहा गया है। फाह्यान ने बताया कि गुप्तकाल में साधारण जनता दैनिक जीवन के विनिमय में वस्तुओं के आदान-प्रदान या फिर कौड़ियों से काम चलाती थी।

वस्त्र –

- निर्माण भी गुप्तकाल का एक प्रमुख उद्योग था। 'अमरकोश' में उसका उल्लेख आता है। गुप्तकाल में धनी व्यक्तियों के लिए बहुत बारीक कपड़ा बनाया जाता था। इसी ग्रंथ में रेशम का कपड़ा बुनने की पूरी प्रक्रिया का विवेचन है।
- भारत के उत्तर-दक्षिण व्यापार में वस्त्रों का प्रमुख स्थान था तथा विदेशी बाजारों में भी भारतीय वस्त्रों की बहुत मांग थी। रेशमी वस्त्र, मलमल, लिलन, ऊनी व सूती वस्त्रों की विदेशों में अधिक मांग थी।

- गुप्तकाल में आभूषण बनाने का शिल्प भी उन्नत अवस्था में था। आभूषण बनाने के लिए स्वर्ण एवं रजत के अलावा विभिन्न प्रकार के रत्नों का भी बहुलता से प्रयोग किया जाता था।
- 'बृहत्संहिता' में 22 प्रकार के रत्नों का उल्लेख है। साहित्यिक साक्ष्य बताते हैं कि गुप्तकाल में काष्ठ-शिल्प भी विकसित अवस्था में था। इलाहाबाद के निकट भीत नामक स्थल पर गुप्तकालीन हाथीदाँत की बनी दो मुहरें प्राप्त हुई हैं।

श्रेणी संगठन -

- शिल्पी, उद्यमी तथा व्यापारी संगठित थे और उन्होंने अपने-अपने संघ बना रखे थे। इन संघों को 'श्रेणी', 'निगम' अथवा 'गण' कहा जाता था। ये श्रेणियाँ व्यावसायिक उद्यम एवं निर्माण के क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती थी।
- अपने व्यवसायों के संचालन के लिए उनके अपने नियम और कोष थे। वे आधुनिक बैंकों की भाँति काम करते थे। ये ऋण ब्याज पर देते थे और निधियाँ ब्याज पर अपने पास रखते थे। व्यापार व उद्योग श्रेणियों में संगठित थे। श्रेणियों में वस्त्रोद्योग, बैंकिंग आदि का कार्य प्रमुख था।
- 'श्रेणियाँ' आर्थिक दृष्टि से सम्पन्न होती थीं और सामाजिक दृष्टि से उपयोगी कार्य भी करती थी, जैसे सभागृहों, यात्रियों के लिए पीने योग्य पानी की सुविधाओं से युक्त विश्रामगृह, जलाशयों, उद्यानों, मन्दिरों आदि का निर्माण।
- मन्दसौर के एक कुमारगुप्त-कालीन लेख से ज्ञात होता है कि दशपुर (मन्दसौर) में तन्तुवाहों (जुलाहों) की एक श्रेणी थी जिसने सूर्य-मन्दिर की स्थापना की थी।
- श्रेणियाँ अपने आन्तरिक मामलों में पूर्ण स्वतंत्र होती थीं।
- श्रेणी के प्रधान को 'ज्येष्ठक' कहा जाता था। यह पद आनुवांशिक होता था।
- नालन्दा एवं वैशाली से गुप्तकालीन श्रेणियों, सार्ववाहों एवं कुलिकों की मुहरें प्राप्त हुई हैं।
- गुप्तकाल में श्रेणी से बड़ी संस्था होती थी, जिसकी शिल्प श्रेणियाँ सदस्य होती थीं, उसे निगम कहा जाता था अर्थात् व्यापारिक समितियों को निगम कहते थे।
- प्रत्येक शिल्पियों की अलग-अलग श्रेणियाँ होती थीं।
- ये श्रेणियाँ अपने कानून एवं परम्परा की अवहेलना करने वालों को सजा देने का अधिकार रखती थीं। व्यापारिक कार्यों का नेतृत्व करने वाला सार्थवाह कहलाता था। निगम का प्रधान 'श्रेष्ठि' कहलाता था।

गुप्तकाल में व्यापार एवं उद्योग -

- गुप्तकाल में व्यापार एवं वाणिज्य अपने चरम उत्कर्ष पर था। आन्तरिक व्यापार सड़कों और नदियों के द्वारा किया जाता था।
- गुप्तकाल में दीर्घ राजनीतिक स्थिरता एवं शान्ति की स्थिति तथा गुप्तकालीन नरेशों द्वारा प्रचुर मात्रा में प्रचलित स्वर्ण मुद्राओं ने व्यापार के विकास में बहुत सहयोग दिया। आन्तरिक व्यापार की प्रमुख वस्तुओं में दैनिक उपयोग की लगभग सभी वस्तुएँ शामिल थीं जिन्हें नगरों एवं ग्रामों के बाजारों में मुख्यतः बेचा जाता था जबकि विलासितापूर्ण वस्तुओं में दूरस्थ प्रदेशों से लाई गई वस्तुएँ शामिल थीं।
- सार्थ भ्रमणशील व्यापारी थे, जिनका नगरीय जीवन में बहुत महत्त्वपूर्ण स्थान था।
- नारद एवं बृहस्पति की स्मृतियों में क्रेताओं और विक्रेताओं के समान हितों की रक्षा के लिए अनेक नियम-विनियम मिलते हैं। गुप्तकाल में मार्गों से यात्रा सुरक्षित एवं निरापद थी।
- चीनी यात्री फाह्यान ने भारत में अपनी यात्रा के दौरान कहीं असुरक्षा महसूस नहीं की।
- उज्जैन, भड़ौच, प्रतिष्ठान, विदिशा, प्रयाग, पाटलिपुत्र, वैशाली, ताम्रलिप्ति, मथुरा, अहिच्छत्र, कौशम्बी आदि महत्त्वपूर्ण व्यापारिक नगर थे। इन सब में उज्जैन सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण व्यापारिक स्थल था क्योंकि देश के हर कोने से मार्ग उज्जैन की ओर आते थे।
- पेशावर, मथुरा, उज्जैन, पैठान मुख्य व्यापारिक एवं औद्योगिक केन्द्र थे।

विदेशी व्यापार -

- भारतीय बन्दरगाहों का बाहर के अनेक देशों से स्थायी सामुद्रिक संबंध बना हुआ था। ये देश थे- चीन, श्रीलंका, फारस, अरब, इथोपिया, बैजन्टाइन (रोमन) साम्राज्य तथा हिन्द महासागर के द्वीप।
- गुप्तकाल में चीन के साथ भारत के विदेशी व्यापार में अत्यधिक वृद्धि हुई। चीन का रेशम जो 'चीनांशुक' के नाम से प्रसिद्ध था, भारत के बाजारों में अत्यधिक लोकप्रिय था।

- रोमन साम्राज्य के पतन से कमजोर हुआ पश्चिमी विदेशी व्यापार में पुनः वहाँ बैजन्टाइन साम्राज्य की स्थापना के बाद वृद्धि हुई। यहां निर्यात की जाने वाली वस्तुओं में रेशम व मसाले प्रमुख थे।
- भृगुकच्छ (भड़ौच) पश्चिमी समुद्रतट पर स्थित एक प्रसिद्ध बन्दरगाह था। कैम्बे, सोपार व कल्याण भी पश्चिमी तट के प्रमुख बन्दरगाह थे।
- पूर्वी तट पर स्थित बन्दरगाहों में घंटशाला, कदूरा तथा गंगा के मुहाने पर ताम्रलिप्ति स्थित था।
- ताम्रलिप्ति पूर्वी भारत में होने वाले सामुद्रिक व्यापार का सबसे बड़ा केन्द्र था। चीन, इण्डोनेशिया तथा श्रीलंका के व्यापारिक जहाज यहाँ आते-जाते थे।
- रघुवंश एवं दशकुमारचरित में ताम्रलिप्ति से होने वाले समृद्ध सामुद्रिक व्यापार के उल्लेख हैं। इस तथ्य को अस्वीकार नहीं किया जा सकता कि गुप्त साम्राज्य एशिया का प्रमुख केन्द्र स्थल था एवं विश्व के सामुद्रिक देशों में वह सर्वप्रमुख सामुद्रिक शक्ति के रूप में प्रसिद्ध था।
- भारत में चीन से रेशम, इथोपिया से हाथीदाँत व अरब ईरान तथा बेक्ट्रिया से घोड़ों का आयात होता था। दक्षिण पूर्वी एशिया, चीन व पश्चिम से ताम्रलिप्ति, भड़ौच आदि बन्दरगाहों से व्यापार होता था।
- मसाले, मोती, वस्त्र, हाथीदाँत, नील का निर्यात एवं धातु, चिनाशंकु, घोड़े आदि का आयात किया जाता था।

उद्देश्य

- बिहार में खेतीबाड़ी की सीमा, उगाई जाने वाली मुख्य फसलों; और सिंचाई के साधनों और तरीकों के बारे में जानकारी प्राप्त करना है।
- गुप्तकालीन बिहार की लगान पद्धति का विश्लेषण करना है।
- गुप्तकालीन लगान इकट्ठा करने में जागीरदार मध्यस्थों की भूमिका की जानकारी प्राप्त करना।
- गुप्तकालीन शिल्पकारी की विविध वस्तुओं के निर्माण के संबंध में चर्चा करना है।
- गुप्तकालीन गैर-कृषि उत्पादनों की व्यवस्था और महत्त्व के बारे में जानकारी प्राप्त करना है।
- अन्तर्देशीय और विदेश व्यापार का वर्णन कर सकेंगे;
- मुख्य वाणिज्य संबंधी कार्य व्यापार और व्यापार से जुड़े कार्मिकों के बारे में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे और;
- गुप्तकालीन मुद्रा प्रणाली के बारे में विस्तृत जानकारी प्राप्त करना है।

निष्कर्ष : निष्कर्ष के रूप यह कहा जा सकता है कि गुप्तकालीन आन्तरिक एवं बाह्य, दोनों प्रकार का व्यापार उन्नति पर था। पुरातन समय से ही भारत के बाह्य देशों के साथ वाणिज्यिक सम्बन्ध थे। देश की आवश्यकताओं को पूर्ण करने के पश्चात् जो सामग्री शेष बचती थी, उसका बाह्य देशों में निर्यात कर दिया जाता था। यातायात एवं परिवहन की समस्या व्यापारियों तथा सामान ले जाने वाले साधनों से पूर्ण होती थी। देश में व्यापार के लिए अनेक सड़कें तथा रास्ते थे, जो सरकार द्वारा सुरक्षित रखे जाते थे। इन सड़कों से युद्ध के समय विशाल सेनाएँ गुजरती थीं। उस समय भाप के जहाज के अभाव के कारण समुद्री व्यापार खतरनाक था, फिर भी व्यापारी तथा विदेशी सौदागर माल बाहर ले जाते थे।

सन्दर्भ सूची

1. राधाकृष्ण चौधरी- पूर्व गुप्तकालीन भारत, भारती भवन प्रकाशन, पटना 2003, पृ०-1
2. वही, पृ०-5
3. इमत्याज अहमद-मध्यकालीन भारत-एक सर्वेक्षण, पटना, 2009, पृ०-1-2
4. कल्हण का राजतरंगिणी, सम्पादक एम०ए० स्टेन, बाम्बे 2002, पृ०-32
5. इमत्याज अहमद- मध्यकालीन भारत-एक सर्वेक्षण, पटना, 2007, पृ०-30
6. जी०सी० चौधरी- पॉलिटिकल हिस्ट्री ऑफ नार्दन इण्डिया फ्रॉम जैन सोर्सज, 2011, पृ०-362
7. अमित कुमार उपाध्याय-पूर्व मध्यकालीन आर्थिक चिन्तन, वाराणसी, 2009, पृ०-28
8. वही पृ० - 49



शिक्षा और भावनात्मक बुद्धिमत्ता

डॉ. मनोज कुमार सिंह*

सार-

यह पत्र भावनात्मक बुद्धिमत्ता की प्रकृति पर एक वर्तमान परिप्रेक्ष्य के संबंध में दो समझ के पुनः उभरने की पड़ताल करता है। पहली समझ चरित्र में द्वैतवादी है जो भावनाओं को आत्मनिरीक्षण के अधीन आंतरिक घटनाओं के रूप में देखती है। दूसरा भावनाओं को ऊर्जा या तनाव के स्रोत के रूप में देखता है जिसे अभिव्यक्ति की प्रक्रिया में दूसरे शब्दों में मुक्त किया जा सकता है एक इकबालिया संदर्भ में एक प्रकार का चिकित्सीय आयाम। ये दो समझ मिलकर उस परिप्रेक्ष्य का निर्माण करती हैं जिसे आत्मनिरीक्षण इकबालिया परिकल्पना के रूप में संदर्भित किया जा सकता है। इस परिकल्पना के साथ कुछ पारंपरिक दार्शनिक समस्याओं पर दोबारा गौर किया गया है और भावनाओं का एक वैकल्पिक परिप्रेक्ष्य पेश किया गया है। यह वैकल्पिक परिप्रेक्ष्य हमारे भावनात्मक जीवन को एक सामाजिक और सांस्कृतिक संदर्भ में विकसित होने के रूप में देखता है जो अनिवार्य रूप से सार्वजनिक है और वस्तुनिष्ठता के लिए खुला है जिसे वस्तुनिष्ठ रचनावादी कहा जा सकता है। परिकल्पना। दोनों परिकल्पनाएँ हमारी चर्चा का आधार बनती हैं। भावनात्मक शिक्षा की अवधारणा का निष्कर्ष यह है कि उत्तरार्द्ध शिक्षा के उद्देश्यों के लिए यह अधिक व्यावहारिक और उपयुक्त समझ है।

भूमिका-

पिछले दशक में राष्ट्रीय पाठ्यचर्या के आविर्भाव ने बच्चों के आध्यात्मिक विकास की प्रकृति और धार्मिक शिक्षा के संदर्भ में और स्कूल की प्रकृति के बारे में जीवंत चर्चा को जन्म दिया है। परिभाषा के माध्यम से विभिन्न प्रयास किए गए हैं और ये मंने कहीं और चर्चा करने की मांग की है (रैडफोर्ड, 1996, 1998, 1999)। अपने व्यापक अर्थ में आध्यात्मिक शिक्षा को मानव विकास के उन परस्पर संबंधित, गैर-भौतिक पहलुओं, नैतिक, व्यक्तिगत और शायद सौंदर्य संबंधी आयामों के साथ-साथ पारलौकिक के अनुभव के कुछ रूपों को संदर्भित करने के लिए देखा जा सकता है। यह तर्क दिया जा सकता है कि भावनात्मक अनुभव विकास के इन सभी पहलुओं की मूलभूत विशेषता है। यह हो सकता है कि हम बिना किसी भावनात्मक भावना के जीवन के एक नैतिक तरीके की परिकल्पना कर सकते हैं और उसे अपना सकते हैं (यह वांछनीय है या नहीं यह दूसरी बात है) लेकिन हमारे अपने व्यक्तित्व या पहचान की भावना और सौंदर्य के प्रति हमारी प्रतिक्रिया की कल्पना करना मुश्किल है और प्रतिबिंब के भावनात्मक रूप से तटस्थ रूपों के रूप में पारलौकिक। इस प्रकार मानव मन की इस गुणवत्ता और इसके संबंध में शिक्षा की भूमिका को समझना महत्वपूर्ण है। भावनात्मक शिक्षा ने हमेशा बच्चे के शैक्षिक अनुभव में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। बच्चों को अपनी भावनाओं के बारे में बात करने के लिए प्रोत्साहित किया जाता है और शिक्षकों के रूप में हम उन्हें सलाह, मार्गदर्शन, प्रशंसा और चेतानि देते हैं न केवल उन्होंने जो किया है, बल्कि भावनात्मक चरित्र के गुणों के लिए जो उनके व्यवहार में स्पष्ट हैं। न ही हम बच्चों के साथ अपने व्यवहार में भावनात्मक रूप से तटस्थ हैं। हम बच्चों के व्यवहार और व्यवहार के जवाब में अपनी भावनाओं को दिखाते हैं और इस तरह उन्हें भावनात्मक महत्व रखने वाली समझ और व्यवहार के सेट में शुरू करने के रूप में देखा जा सकता है। विद्यालय में एक 'भावनात्मक संस्कृति' होती है जो शिक्षकों के भावनात्मक स्वभाव से बनी होती है और विद्यालय द्वारा समर्थित व्यवहारों और मूल्यों में अंतर्निहित होती है। हमें अपने विद्यालयों में किस प्रकार के भावनात्मक वातावरण का लक्ष्य रखना चाहिए जो एक अच्छी भावनात्मक संस्कृति का गठन करता है, जिस पर हमें चिंतन करने की आवश्यकता हो सकती है। इस प्रश्न का कोई तैयार उत्तर नहीं है। कुछ हद तक प्रत्येक विद्यालय को अपने समुदाय और संसाधनों के संदर्भ में अपनी संस्कृति को विकसित करने का प्रयास करना चाहिए। इस पेपर का उद्देश्य उन अवधारणाओं पर विचार करना है जो इस संदर्भ में भावनात्मक शिक्षा के बारे में बहस में लाई जा रही हैं। हावर्ड गार्डनर के बहुबुद्धि के सिद्धांत (गार्डनर, 1993) और भावनात्मक बुद्धिमत्ता पर डैनियल गोलेमैन के लोकप्रिय कार्य (गोलेमैन, 1996) से उत्पन्न भावनात्मक बुद्धिमत्ता के विचार में हालिया रुचि ने ऐसे प्रश्न उठाए हैं जो बहस के लिए एक नया मंच प्रदान करते हैं। हमारे जीवन की गुणवत्ता में भावनाएं स्पष्ट रूप से एक महत्वपूर्ण तत्व हैं लेकिन एक समझ है जो उन्हें व्यक्तिगत, निजी और व्यक्तिगत के व्यक्तित्व के हिस्से के रूप में देखती है।

* असिस्टेंट प्रोफेसर (बीएड.), राठ महाविद्यालय, पैठाणी, पौड़ी गढ़वाल, उत्तराखंड

मोबाइल- 9450589250, 8423407334, ईमेल - mksingh20111@gmail.com

बच्चों के भावनात्मक जीवन के आकार को प्रभावित करने की कोशिश को दखलंदाजी के रूप में देखा जा सकता है और शायद नैतिक रूप से गलत भी बच्चे के प्रकट होने वाले व्यक्तिगत और विशिष्ट व्यक्तित्व पर घुसपैठ के रूप में देखा जा सकता है। दूसरी ओर बच्चे के भावनात्मक स्वभाव निश्चित रूप से बदलते और विकसित होते हैं और यह निस्संदेह मामला है कि हम अपनी कक्षाओं के भावनात्मक माहौल पर विचार करते हैं, खासकर जब हम अपने विद्यार्थियों को रोमांचक और प्रेरित करने की आशा में गतिविधियों की योजना बनाते हैं। साहित्यिक, संगीत और दृश्य कलाओं में हम बच्चों को उनकी भावनात्मक प्रतिक्रियाओं का पता लगाने के लिए प्रोत्साहित करते हैं और बच्चों की काउंसलिंग करते समय हम उन्हें कुछ भावनात्मक अवस्थाओं का प्रबंधन करने में मदद कर सकते हैं जो नाखुश या सामाजिक रूप से समस्याग्रस्त हैं। हमारी भाषा में एक धारणा है कि हमारे भावनात्मक जीवन को कुछ हद तक प्रबंधित और नियंत्रित किया जा सकता है और होना चाहिए। हम अपनी भावनाओं के लिए आंशिक रूप से खुद को जिम्मेदार मानते हैं और प्रशंसा और फटकार की भाषा के माध्यम से हम बच्चों को सिखाते हैं कि कुछ भावनाएँ, उदाहरण के लिए क्रोध, आक्रामकता, ईर्ष्या या अधीरता, बुरी हैं और अन्य, स्नेह, खुशी, सहानुभूति और धैर्य अच्छा हैं।

यह देखना मुश्किल नहीं है कि आवेगी और विनाशकारी व्यवहार में व्यक्त होने पर भावनाएँ एक दायित्व हो सकती हैं। वे अस्पष्ट निर्णय द्वारा लोगों को संवेदनशील बना सकते हैं और तर्कहीन और गैर-जिम्मेदार व्यवहार (बैरेट, 1994) की ओर ले जा सकते हैं। दूसरी ओर वे हमारे सीखने और समझने के संदर्भ में एक महत्वपूर्ण संसाधन हैं, प्रेरणा के संदर्भ में और रचनात्मक वैचारिक निर्माण की प्रक्रिया में, नए विचारों को संभालने की क्षमता और वस्तुओं को देखने के मूल तरीकों को विकसित करने की क्षमता। मानव व्यवहार की हमारी समझ और उपयुक्त सामाजिक संबंध स्थापित करने की हमारी क्षमता में यह महत्वपूर्ण है कि हम दूसरों की भावनाओं को समझने में सक्षम हों और ऐसा करने के लिए उन भावनाओं को अपने स्वयं के अनुभव के दृष्टिकोण से समझना आवश्यक है। यह हो सकता है कि भावनाएँ निर्णय और निर्णयों के संदर्भ में रचनात्मक या दिशात्मक संकेतकों के रूप में समझ के अन्य क्षेत्रों में अधिक मौलिक भूमिका निभाती हैं। अंत में भावनाओं को आंतरिक रूप से सुखद और अप्रिय के रूप में देखा जा सकता है और इस तरह जीवन की गुणवत्ता के संदर्भ में एक आवश्यक तत्व के रूप में हम नेतृत्व करते हैं। इसलिए यह जानना महत्वपूर्ण है कि अप्रिय और सुखद भावनात्मक अनुभवों को कैसे प्रबंधित किया जाए।

शिक्षकों के रूप में हमें अपने विद्यार्थियों के भावनात्मक विकास का संज्ञान देना चाहिए, इस विकास के उचित उद्देश्यों के लिए उन बातों पर विचार करना चाहिए जिन्हें हम भावनात्मक जीवन में महत्व देते हैं। इसके अलावा, इस बात पर विचार करना आवश्यक है कि भावनात्मक रूप से 'अच्छे' जीवन का अनुभव करने के बारे में हमारी समझ के संदर्भ में बच्चों के शैक्षिक विकास के इस पहलू को कैसे समर्थन और प्रोत्साहित किया जाए। शिक्षक के रूप में 'स्टॉक इन ट्रेड' ज्ञान, कौशल, मूल्यों और दृष्टिकोण का भंडार है जो पाठ्यक्रम को बनाता है और शिक्षक के रूप में हम जिस प्रश्न का सामना करते हैं, वह उस स्टॉक के संबंध में हमारे भावनात्मक जीवन का स्थान है। विद्यार्थियों को एक संसाधन के रूप में अपनी भावनाओं को शामिल करने और 'बुद्धिमानी से महसूस करने' के लिए अपने भावनात्मक जीवन को प्रबंधित और नियंत्रित करने में सक्षम होने की स्थिति में कैसे लाया जा सकता है? इससे पहले कि हम इन सवालों का समाधान करें, इस बात पर विचार करने की अधिक मौलिक आवश्यकता है कि हम भावनाओं की अवधारणा कैसे कर सकते हैं। दो व्यापक ऐतिहासिक स्थितियों की पहचान की जा सकती है, एक कुछ हद तक मनोचिकित्सीय परंपरा से और व्यक्तिवादी से और दूसरी रचनावादी परंपरा और सामाजिक चरित्र से। पहली एक द्वैतवादी और व्यक्तिपरक अवधारणा है और हमारे समकालीन हित के दृष्टिकोण से मानव बुद्धि के बारे में बहस में हाल के योगदानों के संदर्भ में नया जीवन दिया जा सकता है। ये हैं कि भावनात्मक बुद्धि के विशिष्ट रूप हैं जो कि हमारी अपनी भावनाओं (गार्डनर, 1993) को आत्मनिरीक्षण करने और समझने की क्षमता से मिलकर बनता है कि ये आंतरिक भावनात्मक अवस्थाएँ 'ऊर्जा का आंतरिक स्रोत हैं जो बाहरी व्यवहार को प्रभावित करती हैं' (गोलेमैन, 1996)। इस प्रकार उन्हें तनाव के एक स्रोत के रूप में देखा जा सकता है जिसे अभिव्यंजक कृत्यों के माध्यम से मुक्त किया जा सकता है, जिनमें से कुछ विनाशकारी हो सकते हैं। स्कूलों में आमतौर पर 'सर्कल टाइम' के रूप में पहचाने जाने वाले सामाजिक संदर्भों में अपने भावनात्मक जीवन के बारे में बात करके शिक्षक इस ऊर्जा को निर्देशित और नियंत्रित करने में विद्यार्थियों की मदद कर सकते हैं।

दूसरी ऐतिहासिक स्थिति जो इस द्वैतवादी, व्यक्तिपरक चरित्र-चित्रण के विपरीत है, वह वह है जिसे भावनाओं की 'सामाजिक रचनावादी' परंपरा से मानव व्यवहार और विचार के उद्देश्यपूर्ण सार्वजनिक रूप से देखे जाने योग्य लक्षणों के रूप में देखा जा सकता है। बल्कि आंतरिक शक्तियों के रूप में देखा जाता है जो हमें प्रभावित करती हैं। विश्वासों और व्यवहारों को समझने के लिए उन्हें हमारे मानसिक जीवन के उन पहलुओं के हिस्से के रूप में देखा जाता है जो उनके संदर्भ में प्राप्त और अनुभव किए जाते हैं। इस हद तक भावनाओं को विशेष सांस्कृतिक संदर्भों में सामाजिक रूप से निर्मित के रूप में देखा जाता है और बच्चों को सिखाया जाता है कि कैसे

और किस हद तक उन संदर्भों में महसूस करना उचित है। यह औपचारिक शैक्षिक वातावरण के साथ-साथ वयस्कों और अन्य बच्चों के साथ उनके व्यवहार और उनके सामाजिक अनुभवों के प्रबंधन में दिन-प्रतिदिन की बातचीत के भीतर होता है। इस प्रकार भावनाओं को समझने के लिए सामाजिक और भौतिक वातावरण और उन व्यवहारों को बाहर की ओर देखना आवश्यक है जिनमें वे भावनाएँ उत्पन्न हो रही हैं, न कि मन में गतिविधि के किसी प्रकार के आंतरिक क्षेत्र की ओर। हम इसे 'वस्तुनिष्ठ/रचनावादी' परिकल्पना कह सकते हैं।

'अंतर्निरीक्षण/स्वीकारोक्ति' परिकल्पना-

जब भावनात्मक अनुभव के बारे में सोचते हैं, तो स्वयं के भावनात्मक जीवन तक व्यक्तिगत पहुंच दूसरों के भावनात्मक जीवन तक पहुंच की तुलना में कम समस्याग्रस्त लगती है। एक मजबूत सहज ज्ञान है कि हमारे पास अपनी भावनाओं तक विशेषाधिकार प्राप्त पहुंच है, कि केवल अपनी भावनाओं को प्रतिबिंबित करके हम उनकी वास्तविक प्रकृति को जान सकते हैं। दूसरों को ढूँढना असामान्य नहीं है, उदाहरण के लिए कवि, जो हमारी भावनाओं को इस तरह से व्यक्त करने में सक्षम प्रतीत होते हैं कि हम स्वयं ऐसा नहीं कर सकते थे। हम आनंद लेते हैं जिसे 'पहचान के झटके' के रूप में वर्णित किया जा सकता है (ब्रूनर, 1979) क्योंकि कवि इतने प्रभावी ढंग से वर्णन करता है कि हम शायद महसूस करने के बारे में आधे जागरूक थे। हम इस सदमे को महसूस करते हैं क्योंकि हम सोचते हैं कि केवल हम ही जानते हैं कि हम कैसा महसूस करते हैं। हावर्ड गार्डनर हमारी भावनाओं को जानने और समझने की क्षमता को आत्मविश्लेषण बुद्धि को नियोजित करने में सक्षम होने के रूप में मानते हैं, आत्मनिरीक्षण से अपनी भावनाओं का अध्ययन करने की क्षमता और इस 'आंतरिक' अनुभव से 'बाहरी' अभिव्यक्ति के रूप में काम करने के लिए: कोर यहाँ काम करने की क्षमता अपने स्वयं के अनुभव जीवन तक पहुँच है - किसी के प्रभाव या भावनाओं की सीमा, इन भावनाओं के बीच भेदभाव को प्रभावित करने की क्षमता और अंततः उन्हें लेबल करने के लिए, उन्हें प्रतीकात्मक कोड में शामिल करने के लिए, उन्हें समझने के साधन के रूप में आकर्षित करने के लिए और अपने व्यवहार का मार्गदर्शन करना। (गार्डनर, 1993)

यदि इस तरह से हम भावनात्मक भावनाओं की प्रकृति को समझ पाते हैं तो यह प्रश्न उठता है कि हम दूसरों की भावनात्मक भावनाओं को कैसे समझ सकते हैं। दूसरों के भावनात्मक जीवन के बारे में दावा करने में सक्षम होने के लिए हम अपने स्वयं के भावनात्मक जीवन के बारे में निश्चितताओं से कैसे छलांग लगा सकते हैं? 'आत्मनिरीक्षण/स्वीकारोक्ति' परिकल्पना के अनुयायी समानुभूति की अवधारणा का आह्वान करते हैं (पार्क, 1999)। ऑक्सफोर्ड इंग्लिश डिक्शनरी के अनुसार सहानुभूति 'किसी के व्यक्तित्व को (और पूरी तरह से समझने वाली) चिंतन की वस्तु' में प्रोजेक्ट करने की क्षमता है। समानुभूति की यह अवधारणा 19वीं और 20वीं शताब्दी के अंत में जर्मन शब्द 'ईनफुह्लुंग' से शुरू हुई, जिसका अर्थ है 'महसूस करना'। यह शब्द उस तरीके को संदर्भित करता है जिसमें कलाकार ने वस्तुओं की रोजमर्रा की समझ को पार करने की कोशिश की और आवश्यक होने का प्रतिनिधित्व करने या व्याख्या करने की कोशिश की, धारणा की वस्तु के अस्तित्वगत गुण (वॉरिंगर, 1992)। दर्शन कि वस्तुओं में एक आवश्यक प्रकृति होती है जो उनके भीतर छिपी होती है, एक ऐसी प्रकृति जो केवल किसी प्रकार के प्रक्षेप्य प्रतिबिंब द्वारा सुलभ होती है, को 'अनिवार्यता' कहा जा सकता है। जब मनुष्यों पर लागू किया जाता है तो यह आवश्यकवादी दर्शन हमें एक 'आंतरिक सार' के बारे में अटकलबाजी की ओर ले जाता है जो 'आत्मा' की 'आत्मा' जैसे शब्दों से जुड़ा हो सकता है। इस मामले में भावनाओं को उस आंतरिक सार के एक भाग के रूप में देखा जाता है, जो मेरी व्यक्तिगत और निजी भावना की विशेषता है। दूसरों के भावनात्मक जीवन को समझने के संदर्भ में सहानुभूति की क्षमता को इन 'आंतरिक' विचारों और भावनाओं को अपने दिमाग में प्रोजेक्ट करने और उनकी भावनाओं को 'अनुभव' करने और उनके विचारों को 'सोच' करने के तरीके के रूप में देखा गया है। यह समझ का एक प्रकार का सक्रिय, सहानुभूतिपूर्ण रूप है। कार्ल रोजर्स परामर्श के संदर्भ में इस प्रक्रिया का वर्णन करते हैं। उनका कहना है कि काउंसलर की भूमिका निम्नलिखित के द्वारा सहानुभूति व्यक्त करने की उनकी क्षमताओं का प्रयोग करने की है: अस्थायी रूप से अपने (परामर्श प्रक्रिया का विषय) जीवन में बिना निर्णय लिए नाजुक ढंग से आगे बढ़ना, जिसका वह शायद ही अर्थ समझ रहा हो। जागरूक हैं, लेकिन उन भावनाओं को उजागर करने की कोशिश नहीं कर रहे हैं जिनके बारे में व्यक्ति पूरी तरह से अनजान है, क्योंकि यह बहुत खतरनाक होगा। इसमें उसकी दुनिया के बारे में आपकी संवेदना को संप्रेषित करना शामिल है, जैसा कि आप उन तत्वों पर ताजा और बिना भयभीत आँखों से देखते हैं जिनसे व्यक्ति भयभीत है। इसका अर्थ है कि बार-बार उसके साथ अपनी 'संवेदन' की सटीकता की जाँच करना और आपको प्राप्त होने वाली प्रतिक्रियाओं द्वारा निर्देशित होना। आप अपने भीतर की दुनिया में एक भरोसेमंद साथी हैं। (मैकलॉघलिन, 1995)

इस विश्लेषण में जांच के विषय को उसकी अपनी भावनाओं तक विशेषाधिकार प्राप्त पहुंच के रूप में मान्यता दी गई है और यद्यपि परामर्शदाता सहानुभूतिपूर्ण कौशल का प्रयोग करके उन भावनाओं को महसूस कर सकता है, फिर भी उसे पुष्टि के लिए विषय के साथ जांच करनी होगी। अस्तु ने भावनाओं के शारीरिक या अंतरंग पहलू पर ध्यान आकर्षित किया, तनाव या दबाव की भावना जो भय,

क्रोध या उत्तेजना के अनुभव से जुड़ी है। वह 'खून के उबाल' (एवरसन, 1995) के संदर्भ में क्रोध को देखने की भौतिक विज्ञानी की प्रवृत्ति के बारे में लिखता है। वह मनोरंजन की भूमिका को आराम या मोड़ के रूप में भी लिखता है, तर्कसंगत चिंतन (हचिंसन, 1995) के अधिक महत्वपूर्ण व्यवसाय से पहले एक प्रकार का भावनात्मक संतुलन फिर से स्थापित करने का एक तरीका है। वह जिन कलाओं को देखता है, उन रूपों के रूप में जिनमें भावनाएँ शुद्ध होती हैं, वह प्रक्रिया जिसे हम कैथार्सिस कहते हैं। इस बात पर बहस हो सकती है कि कैथार्सिस की इस प्रक्रिया से अरस्तू का क्या मतलब है, चाहे वह दबी हुई भावनाओं की अभिव्यक्ति हो, मनोवैज्ञानिक दबाव से राहत पाने की बात हो, या उस तरह के ज्ञान को प्राप्त करने की बात हो जो हमें उचित रूप से, सही मात्रा में महसूस करने की ओर ले जाए और सही वस्तुओं की ओर (बार्न्स, 1995)। 'चिकित्सीय/व्यक्तिवादी' संकल्पना पूर्व दृष्टिकोण की ओर झुकती है। डैनियल गोलेमैन, जिनका काम शिक्षकों के बीच अत्यधिक प्रभावशाली बना हुआ है, भावनाओं को 'ऊर्जा के आंतरिक स्रोत के रूप में वर्णित करता है जो बाहरी व्यवहार को प्रभावित करता है' जिसे अभिव्यक्ति के माध्यम से परिष्कृत किया जा सकता है (गोलेमैन, 1996)। पीटर शार्प भावनात्मक शिक्षा को मानसिक स्वास्थ्य के विकास और भावनात्मक तनावों की अभिव्यक्ति (शार्प 2001) के माध्यम से रिलीज के साथ जोड़ता है। अभिव्यक्ति की प्रक्रिया में एक अभिव्यंजक गुण होता है जो भावनात्मक दबाव या 'आंतरिक ऊर्जा' से राहत के अर्थ में कैथार्सिस होता है।

इस खाल के आत्मनिरीक्षण और इकबालिया दोनों पहलुओं में, भावनाओं को व्यक्तिपरक चेतना में आंतरिक हलचल के रूप में माना जाता है, जिसे विभिन्न तरीकों से तलाशने और व्यक्त करने की आवश्यकता होती है, जिसमें नेत्रहीन और मौखिक रूप से उनका प्रतिनिधित्व करना शामिल है। भावनाओं पर मानसिक शक्ति के स्रोत के रूप में जोर दिया जाता है जिसे निर्णय लेने के लिए उपयोग किया जा सकता है। एक तरफ भावनाओं की द्वैतवादी समझ की प्रवृत्ति है, आंतरिक घटनाओं के रूप में, जो कम से कम पहले उदाहरण में, अनिवार्य रूप से प्रत्येक व्यक्ति के लिए निजी हैं (बाहरी घटनाओं के विपरीत जो भावनाओं के लिए व्यवहार और शारीरिक स्थितियाँ हैं)) और दूसरी बात यह है कि भावनाएँ तर्कसंगत या बौद्धिक बुद्धिमत्ता के विपरीत समान रूप से मूल्यवान हैं लेकिन मानव चेतना में गुणात्मक रूप से भिन्न हैं।

समालोचना और विकल्प: 'वस्तुनिष्ठ/रचनावादी' परिप्रेक्ष्य-

इसके 'सामान्य ज्ञान' और सहज रूप से सही महसूस करने के बावजूद, 'आत्मनिरीक्षण/स्वीकारोक्ति' परिकल्पना द्वैतवादी मान्यताओं पर टिकी हुई है जो हमारी समझ को भ्रमित करने और रहस्यमय बनाने के लिए संभावित रूप से देखी जा सकती है। मैंने इस मन/शरीर द्वैतवादी धारणा से जुड़ी समस्याओं पर कहीं और चर्चा की है (रैडफोर्ड, 2002)। इस तर्क का उद्देश्य इस तर्क के कुछ प्रभावों को देखना है। पहले उदाहरण में यह भावना और व्यवहार के बीच दो तरह के संबंध की संभावना से ध्यान हटाने की कोशिश करता है, जिस तरह व्यवहार को भावना के परिणामस्वरूप देखा जा सकता है, भावनात्मक स्थिति को व्यवहार के उत्पाद के रूप में भी देखा जा सकता है। दूसरे उदाहरण में यह बच्चे को एक अलग और व्यक्तिगत दुनिया में घेरता है जो भावनाओं के संचार के संबंध में निराशाजनक संभावित हारवादी समझ को जन्म देता है। यदि भावनाओं को कुछ हद तक व्यवहार के उत्पाद के रूप में देखा जा सकता है तो बच्चों के भावनात्मक जीवन की समझ और शिक्षा दोनों के संदर्भ में इसका पर्याप्त लाभ है। समझ के मामले में हमें किसी आंतरिक दुनिया में नहीं जाना है जो व्यवहार के पीछे है, बल्कि हम व्यवहार पर ही विचार कर सकते हैं। वास्तव में, यह तर्क दिया जा सकता है कि जब किसी घटना के संबंध में अन्य लोगों की भावनाओं और वास्तव में हमारी अपनी भावनाओं पर विचार किया जाता है, तो ऐसा होने की संभावना अधिक होती है।

विलियम जेम्स ने कार्यों या व्यवहार के आंतरिक अनुभवों और भावनाओं के अनुभव की अटूट रूप से जुड़ी हुई प्रकृति पर ध्यान दिया। जेम्स के लिए यह कहने का कोई मतलब नहीं है कि क्रियाएँ भावनाओं के कारण होती हैं, जबकि भावनाएँ क्रियाओं के कारण होती हैं (प्रेगरी, 1987)। यह तर्क दिया जाता है कि अपने कार्यों को प्रबंधित करके, हम अनिवार्य रूप से अपनी भावनाओं को प्रबंधित कर रहे हैं, क्योंकि वे एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। जीन पॉल सार्त्र ने इसी तरह भावनाओं को उन चीजों पर निर्भर होने के लिए देखा जो हम करते हैं 'माँ उदास है क्योंकि वह रोती है हम डरते हैं क्योंकि हम भाग जाते हैं।' इसे इस विचार के संदर्भ में परिभाषित किया गया है कि भावनाओं को परंपरागत रूप से उनके लिए परिधीय माना जाता रहा है। यानी, व्यवहार जो सार्त्र द्वारा 'परिधीय सिद्धांत' (सार्त्र, 1962) के रूप में संदर्भित किए जाने के परिणामस्वरूप होता है। भावनात्मक अवस्थाओं की व्याख्या करने की संभावना नहीं है क्योंकि भावनात्मक अवस्थाएँ सीमित मूल्य की होती हैं। अगर जब मैं मां से पूछूँ कि वह उदास क्यों है, तो शायद वह यह नहीं बताएगी कि मैं रो रही हूँ। अगर मैं उससे पूछूँ कि वह क्यों रो रही है तो वह कह सकती है कि ऐसा इसलिए है क्योंकि वह दुखी है, लेकिन यह मुश्किल से मददगार होगा। यदि महिला रो रही है, तो यह कहकर कि वह दुखी है, खाल में थोड़ा जोड़ा जाता है (जब तक कि उसके दुख के आँसुओं)

को खुशी के आँसुओं से अलग न किया जाए। मुझे जो जानना चाहिए वह ऐसी परिस्थितियाँ हैं जिन्होंने इस व्यवहार को जन्म दिया है और यही वह स्पष्टीकरण है जो वह देने की सबसे अधिक संभावना है।

यह निश्चित रूप से मामला है कि भावनाओं को हमारे शरीर के भीतर होने वाले आंतों के परिवर्तनों के अनुभवों से जोड़ा जा सकता है, एक दिल की धड़कन, उदासी के साथ डर, आँसू की एक धारा के साथ, पेट में भीगने की भावना के साथ दुःख और यह शारीरिक भावनाएं हो सकती हैं जो नेतृत्व करती हैं हमें अपनी भावनात्मक भावनाओं को अपने भीतर से आने के बारे में सोचना चाहिए। लेकिन अगर हमसे पूछा जाए कि हमारी भावनाओं के स्थान के बारे में पूछा जाए तो आपकी उत्तेजना या क्रोध की भावना कहां है? हमें यह अजीब लग सकता है। निश्चित रूप से हम अपनी भावनाओं को दूसरों से छिपाने की कोशिश कर सकते हैं और यह दृश्य उनकी आंतरिक प्रकृति की हमारी भावना को पुष्ट करता है। अकादमिक पूछताछ और सामान्य उपयोग दोनों में मानसिक घटनाओं का पता लगाने की प्रवृत्ति बढ़ रही है, जैसे मस्तिष्क के कामकाज के लिए भावनाएं, इस प्रकार भावनाओं को किसी तरह मस्तिष्क में स्थित देखना (लेडीक्स, 1998) विशेष न्यूरोलॉजिकल घटनाओं को निश्चित रूप से दी गई भावनात्मक अवस्थाओं के साथ मेल खाने के लिए समझा जाता है, लेकिन भावनात्मक स्थिति तंत्रिका संबंधी घटना के समान नहीं है। उस व्यक्ति का जो मैं हूँ और मेरे तत्काल व्यक्तिगत इतिहास के बारे में मेरे वर्तमान पिछले और भविष्य के व्यवहार के बारे में दूसरों के साथ संबंधों के बारे में और इसी तरह। साहित्य का एक विशाल निकाय है जो सार्वजनिक और वस्तुनिष्ठ संदर्भ में ऐसी भावनात्मक अवस्थाओं की हमारी समझ को स्थापित करता है जिसे तंत्रिका घटनाओं 'x', 'y' और 'z' के वर्णन के साथ बराबर नहीं किया जा सकता है। ऐसा मस्तिष्क होना जिसमें शरीर के बाकी हिस्सों के साथ-साथ ऐसी तंत्रिका संबंधी घटनाएं शामिल हों, भावनात्मक अनुभव के लिए एक आवश्यक शर्त है, लेकिन किसी प्रकार की पर्यावरणीय स्थिति किसी प्रकार की घुसपैठ या आकर्षण की वस्तु है। यह कहने के लिए पर्याप्त है कि सोच आंतरिक घटनाओं के रूप में भावनाएँ सहज रूप से शक्तिशाली परिप्रेक्ष्य हो सकती हैं लेकिन यह तार्किक या अनुभवजन्य रूप से आवश्यक नहीं है। हमें अपनी भावनाओं को इस तरह अवधारणाबद्ध करने की आवश्यकता नहीं है और व्यावहारिक दृष्टिकोण से ऐसा न करना अधिक उपयोगी हो सकता है।

शिक्षकों के लिए तीन व्यावहारिक अवलोकन

व्यावहारिक चर्चा के तीन क्षेत्र हैं जो इस बहस से उत्पन्न होते हैं और शैक्षिक दृष्टिकोण से उपयोगी हो सकते हैं। पहला हमारे ज्ञान और उस भाषा से संबंधित है जिसका उपयोग हम भावनात्मक भावनाओं का वर्णन करने के लिए करते हैं, दूसरा, हमारे भावनात्मक जीवन की प्रकृति के रूप में वस्तुनिष्ठ समझ के लिए खुला है और तीसरा वह दृष्टिकोण जो हम बच्चों के भावनात्मक विकास और अभिव्यक्ति के संदर्भ में शिक्षक की भूमिका को लेते हैं।

भावनाएँ और भाषा

हम बच्चों को यह जानने में कैसे मदद करते हैं कि वे कैसा महसूस कर रहे हैं? यह दावा किया जाता है कि हमारी अपनी भावनात्मक अवस्थाओं का ज्ञान आत्मनिरीक्षण से आता है इसलिए बच्चे को उसकी अपनी भावनाओं के बारे में सिखाने के लिए हम उसे आंतरिक रूप से प्रतिबिंबित करने के लिए कह सकते हैं, लेकिन वह क्या सोच रही है? आत्मनिरीक्षण की यह प्रक्रिया वास्तव में क्या है? जब कोई बच्चा मुझे बताता है कि वह प्रफुल्लित महसूस करता है, तो यह पूछने का कोई मतलब नहीं है कि वह कैसे 'जानती' है कि वह उत्साहित है जैसे कि कोई संदेह था और उसे भावनाओं के कुछ 'रंग चार्ट' पर आंतरिक रूप से प्रतिबिंबित करने की आवश्यकता थी। हो सकता है कि यह भावना इतनी अधिक नहीं है जितना कि इसका वर्णन करने के लिए इस्तेमाल किया जाने वाला शब्द प्रश्न पर है। क्या वह 'प्रफुल्लित' शब्द का सही इस्तेमाल कर रही है? इसे जांचने के लिए वह शब्दकोश में इसका अर्थ देख सकती है और जांच कर सकती है कि वहां जो लिखा गया है वह सटीक रूप से वर्णन करता है कि वह कैसा महसूस करता है। तथ्य यह है कि एक शब्दकोश परिभाषा है और इस शब्द के पारंपरिक सहमत उपयोग से संकेत मिलता है कि भावना अनिवार्य रूप से निजी होने के बजाय एक सार्वजनिक है, जिसे दूसरों ने अनुभव किया है और जिसे साझा किया जा सकता है। यदि मैं प्रफुल्लित होने का दावा करता हूँ और मेरे तरीके और व्यवहार उस दावे के अनुरूप हैं, तो यह देखना मुश्किल नहीं है कि दूसरों को कैसे पता चलेगा कि मैं कैसा महसूस कर रहा हूँ। उनके पास इस ज्ञान और प्रश्न के अच्छे कारण होंगे, 'लेकिन क्या आप वास्तव में जानते हैं कि आप कैसा महसूस करते हैं?' बेमानी हो जाता है। अपने और दूसरों के भावनात्मक जीवन को समझने के संबंध में भाषा की भूमिका और महत्व पर बहुत अधिक शोध ध्यान दिया गया है (सर्वेटिस, 2002, फ्रेजर, 2002, ईगन, 2001, कनिंघम-बर्ले एट अल, 2002)। बच्चों को भावनाओं की भाषा ठीक उसी तरह सिखाई जानी चाहिए जैसे उन्हें रंगों, छटाओं, आकारों और भाषा के अन्य सभी रूपों की भाषा सिखाई जाती है जो उन्हें दुनिया के अपने अनुभव को समझने में मदद करते हैं। इस संबंध में उन्हें यह समझने में मदद करना महत्वपूर्ण है कि भावनात्मक अनुभव दूसरों के साथ साझा की जाने वाली सार्वजनिक घटनाएँ हैं, और यह कि दूसरे यह समझते हैं कि विशेष क्षणों में कैसा महसूस करना है।

वस्तुनिष्ठता और भावनाएँ

दूसरा व्यावहारिक अवलोकन व्यक्तिपरक और वस्तुनिष्ठ दोनों स्तरों पर समझी जाने वाली भावनाओं की प्रकृति से संबंधित है। अनिवार्य रूप से आंतरिक और संभावित रूप से बाहरी दुनिया से छिपे हुए भावनाओं के दृष्टिकोण से जुड़ा हुआ है, उन्हें व्यक्तिपरक के रूप में देखा जाता है, दूसरे शब्दों में एक व्यक्तिगत प्रतिक्रिया जो व्यक्तिवादी है और कुछ हद तक मनमाना और गैर-जवाबदेह है। भावनाओं की परम गोपनीयता की यह धारणा उस शिक्षक के लिए मददगार नहीं है जो सामाजिक और सार्वजनिक दायरे के माध्यम से कुछ भावनात्मक अनुभवों को विकसित करने और घटनाओं के प्रति अधिक परिष्कृत प्रतिक्रियाओं के लिए बच्चे का समर्थन करने का प्रयास कर रहा है। भावनाएँ निश्चित रूप से व्यक्तिपरक अनुभव हैं। वे एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति में भिन्न होते हैं और अवसर पर प्रकट होने के कारण सहज तरीके से अनुभव में उभर आते हैं। हालाँकि, हम जिस भाषा का उपयोग करते हैं और जो कारण हम उनके लिए देते हैं, दोनों के संदर्भ में वे वस्तुनिष्ठता के लिए भी खुले हैं। जैसा कि हमने ऊपर उल्लेख किया है, भावनाओं की भाषा होने में हम उनकी सार्वजनिक प्रकृति और उस समानता को स्वीकार कर रहे हैं जो विभिन्न लेबल या वर्गीकरण उन पर डालते हैं। एक शब्द एक सार्वजनिक घटना है जिसमें सहमत अर्थ और सही और गलत उपयोग की संभावना होती है और इस तरह इसके आधार पर अनुभव की समानता होती है। अनुभव की समानता और एक साझा संचार प्रणाली के इस संयोजन के साथ हम लोगों के भावनात्मक राज्यों के विवरण को ठीक उसी तरह की निष्पक्षता के साथ मान सकते हैं जैसे हम उनके मानसिक जीवन, उनके ज्ञान और समझ के किसी अन्य पहलू का वर्णन कर सकते हैं।

लोगों के भावनात्मक अनुभवों के वस्तुनिष्ठ विवरण की संभावना इस तरह की घटनाओं की व्याख्या करने और उनका हिसाब देने में सक्षम होने के कारण देने की हमारी क्षमता के आधार पर टिकी हुई है। मैं उन भावनात्मक अवस्थाओं के कारण बता सकता हूँ जो मैं महसूस करता हूँ और मैं दूसरों से उन भावनाओं के कारणों के बारे में पूछ सकता हूँ जो वे अनुभव कर रहे हैं। इस तरह भावनात्मक अनुभव अधिक या कम औचित्य के लिए खुले हो सकते हैं। शिक्षकों के रूप में हमारा अधिकांश समय बच्चों से यह पूछने में व्यतीत होता है कि वे ऐसा क्यों महसूस करते हैं और उन्हें दी गई स्थितियों के लिए उपयुक्त भावनात्मक प्रतिक्रियाओं को अपनाने के लिए प्रोत्साहित करते हैं। वयस्कों की तुलना में बच्चों की अलग-अलग प्राथमिकताएँ हो सकती हैं और उन घटनाओं से बहुत परेशान हो सकते हैं जिन्हें हमें तुच्छ समझना चाहिए और दूसरों से बहुत खुश होना चाहिए जो हमें अछूता छोड़ देते हैं। क्या महत्वपूर्ण है और वे किस भावना के साथ जुड़ रहे हैं, इस बारे में उनकी भावना का सम्मान करते हुए, हमें उनके अपने हित में उन्हें प्राथमिकताओं के एक संतुलित और स्थिर सेट की ओर आकर्षित करने की तलाश करनी चाहिए, जिसे हम भावनात्मक रूप से 'अच्छे जीवन' से जोड़कर समझ सकते हैं। इस दृष्टि से भावनात्मक विकास खोज और स्वीकारोक्ति की आंतरिक यात्रा कम है जो 'आत्मनिरीक्षण/स्वीकारोक्ति' परिकल्पना में निहित है, बल्कि एक साझा भाषा पर आधारित सामाजिक निर्माण और कुछ स्थितियों में भावनात्मक प्रतिक्रियाओं के उपयुक्त होने की समझ है।

शिक्षक की भूमिका

यदि किसी की भावनात्मक भावनाओं को अभिव्यक्त करने की प्रक्रिया को आंतरिक तनावों को 'काम करने' के रूप में देखा जाता है, तो संभावित खतरनाक 'आंतरिक घटनाओं' को निरस्त करने के लिए शिक्षक की भूमिका परामर्शदाता और चिकित्सक के समान हो जाती है। इस संदर्भ में चिकित्सा की अवधारणा मानसिक स्वास्थ्य की धारणा से संबंधित है और यह निश्चित रूप से मामला है कि शिक्षा, जहाँ तक इसका मानसिक स्वास्थ्य पर सकारात्मक प्रभाव पड़ता है, एक चिकित्सीय अनुभव है। शिक्षिका बच्चों की देखभाल करने वाली और शिक्षिका दोनों है और इसलिए वह परामर्श देने और व्यक्तिगत सहायता और मार्गदर्शन देने में शामिल होगी। कला, खेल और कुछ हद तक इकबालिया चर्चा के माध्यम से 'अभिव्यंजक' गतिविधि के अवसर प्रदान करने में, शिक्षक अनिवार्य रूप से 'चिकित्सक' और सामाजिक कार्यकर्ता (शूस्टर, 2000; वेब और वुलियमी, 2002) के रूप में न्यूनतम अर्थ में लगे हुए हैं। हालाँकि, इस बात पर जोर देना महत्वपूर्ण है कि शिक्षकों को इस भूमिका के लिए प्रशिक्षित नहीं किया गया है और वे जो देखभाल और समर्थन दे रहे हैं, वह शौकिया चिकित्सक की तुलना में 'लोको पेरेंटिस' में उनकी भूमिका में शामिल होने के करीब होगा। शिक्षकों की रुचि और विशेषज्ञता उन तरीकों में निहित है जिसमें वे बच्चों को गतिविधि के सामाजिक रूपों, ज्ञान और समझ के सार्वजनिक रूपों और सामाजिक, नैतिक और भावनात्मक संस्कृति में मार्गदर्शन करते हैं जिसके भीतर स्कूल या नर्सरी स्थित है।

बेशक हम बच्चों में व्यक्तियों के रूप में रुचि रखते हैं लेकिन व्यक्तित्व सामाजिक निर्माण के हिस्से में आदान-प्रदान और अनुभवों को साझा करने में एक उत्पाद है। हमारी प्राथमिक जिम्मेदारी अनुभवों को साझा करने और सामान्य समझ और व्यवहार के निर्माण का समर्थन करना है, दूसरे शब्दों में 'सीखने का समाज' का प्रबंधन करना है जिसके भीतर बच्चे संचार और अभिव्यक्ति में अधिक कुशल हो जाते हैं। हमें कभी-कभी व्यक्तिगत बच्चों का समर्थन करना पड़ सकता है जो विशेष भावनात्मक समस्याओं का सामना कर रहे

हैं जिन्हें मानसिक स्वास्थ्य शर्तों में परिभाषित किया जा सकता है। इन उदाहरणों में आम तौर पर एक शैक्षिक मनोवैज्ञानिक के मार्गदर्शन में हम बच्चे को किसी प्रकार की चिकित्सीय गतिविधि में सहायता करेंगे, लेकिन केवल देखभाल करने वाले माता-पिता से अपेक्षा की जा सकती है। यह सराहना की जाती है कि बच्चों की भावनात्मक शिक्षा की प्रकृति के बारे में और अधिक कहने की जरूरत है जहां वे भावनात्मक और व्यवहार संबंधी कठिनाइयों का सामना कर रहे हैं और इन बच्चों के साथ काम करने में शिक्षक की क्षमताओं और जिम्मेदारियों की सीमा क्या है। हालांकि इस पत्र के प्रयोजनों के लिए हम उन बच्चों के साथ काम करने वाले शिक्षक की केंद्रीय सामाजिक भूमिका में रुचि रखते हैं जो इस श्रेणी में नहीं आते हैं। इस खंड में 'आत्मनिरीक्षण/स्वीकारोक्ति' परिकल्पना की समालोचना शामिल है कि यह शिक्षक के कार्यों और समझ से कैसे संबंधित है। यह सुझाव दिया गया है कि यह दृष्टिकोण भावनाओं को किसी भी तरह से व्यक्तिगत और अनजान के रूप में रहस्यमय बनाने के लिए काम कर सकता है, लेकिन संबंधित व्यक्ति और यह शिक्षक और भावनात्मक शिक्षा की धारणा के लिए अनुपयोगी है। इस समालोचना के संदर्भ में कक्षा या नर्सरी के लिए इसके निहितार्थ के व्यापक और सामान्य दृष्टिकोण के साथ एक वैकल्पिक परिप्रेक्ष्य की रूपरेखा तैयार की गई है। इस पेपर का दूसरा भाग भावनात्मक शिक्षा की प्रकृति के संबंध में अधिक विशिष्ट विचारों से संबंधित है।

हम बच्चों को भावनात्मक रूप से कैसे शिक्षित करते हैं?

डायलन इवांस ने छह बुनियादी भावनाओं, आनंद, संकट, क्रोध, भय, आश्चर्य और घृणा की रूपरेखा दी है कि मानवविज्ञानी ने सार्वभौमिक और जन्मजात होने की संभावना के रूप में पहचान की है (इवांस, 2001)। यह कहना कि ये भावनाएँ जन्मजात हैं, हालांकि भ्रामक होने का तर्क दिया जा सकता है। बिना किसी डर या क्रोध का अनुभव किए किसी व्यक्ति के बड़े होने की कल्पना करना पूरी तरह से संभव है, तो यह कहने का क्या मतलब है कि ये भावनाएँ जन्मजात थीं? हमें क्या कहना चाहिए कि इस तरह की भावनाओं का अनुभव करने के लिए शारीरिक तंत्र जीव के लिए जन्मजात हैं, लेकिन उन्हें ट्रिगर करने के लिए पर्यावरणीय कारक आवश्यक हैं। इस धारणा के लिए एक निश्चित स्पष्टता हो सकती है। यदि हम भौतिकवादी से संबंधित दृष्टिकोण लेते हैं कि संपूर्ण मानसिक जीवन किसी तरह शरीर के शारीरिक कामकाज पर निर्भर है (हालांकि न तो इसके साथ समान है और न ही इसके द्वारा पर्याप्त रूप से समझाया गया है) तो हम यह तर्क दे सकते हैं कि चूंकि हमारी भौतिक उपस्थिति हमारे सहज अनुवांशिक विरासत के लिए पर्याप्त रूप से जवाबदेह है। तब हमारी मानसिक उपस्थिति है। हम मानसिक रूप से जो कुछ भी कर सकते हैं वह उन भौतिक स्थितियों से प्राप्त किया जा सकता है जो हमारे जन्मजात बंदोबस्त का हिस्सा हैं। विकास के कुछ क्षेत्रों में उदाहरण के लिए भाषा या संगीत की बुद्धि में यह सुझाव दिया गया है कि न्यूरोन्स के सहज न्यूरोलॉजिकल स्थितियां नेटवर्क हैं जिन्हें अपेक्षित भाषाई या संगीत विकास के लिए प्रेरित किया जाना है। यदि इन नेटवर्कों को शैशवावस्था के वर्षों के दौरान उत्तेजित नहीं किया जाता है तो वे क्षीण हो सकते हैं और जिन बुद्धिमान क्षमताओं का वे प्रतिनिधित्व करते हैं वे खो सकते हैं (पॉपर एंड एक्लस, 1977)।

यह अनुमान लगाना दिलचस्प है कि क्या इसी तरह की स्थितियां न्यूरोलॉजिकल नेटवर्क पर लागू हो सकती हैं जो हमारे भावनात्मक अनुभवों में आवश्यक विशेषताएं हैं कि अगर कोई बच्चा शैशवावस्था में डरना नहीं सीखता है, तो क्या वह बाद के जीवन में डर महसूस करने की क्षमता खो देगा। स्पष्ट रूप से इस परिकल्पना के बढ़ते बच्चों का परीक्षण करना काफी अनुचित होगा और यह हमें जो बताता है उसके संदर्भ में मानवशास्त्रीय साक्ष्य सीमित है। भावनाओं को महसूस करने की हमारी क्षमता खो जाएगी या नहीं, अगर हम उन्हें प्रारंभिक जीवन में अनुभव करने के लिए प्रेरित नहीं किए गए, तो अधिकांश इस बात से सहमत होंगे कि बच्चों को अपने शुरुआती बचपन में कई तरह के भावनात्मक अनुभवों से गुजरना पड़ता है। बच्चों को घर की सुरक्षित सीमा और सुरक्षा के भीतर गुस्सा करने, डरने और कुछ संकट का अनुभव करने की अनुमति है। उन्हें खुशी, आश्चर्य और कभी-कभी घृणा महसूस करने के लिए भी प्रोत्साहित किया जाता है। जीन ब्रिग्स, उत्तरी कनाडा में इनुइट समुदायों में छोटे बच्चों की भावनात्मक शिक्षा की जांच कर रहे हैं, बताते हैं कि कैसे माता-पिता और देखभालकर्ता भावनात्मक अनुभव के लिए बच्चों की क्षमताओं को चुनौती देंगे जो हमारे अपने समुदाय में कुछ चिंताओं को जन्म दे सकते हैं। एक बच्चा जो अपने छोटे भाई से ईर्ष्या करता है, उससे पूछा जा सकता है, 'तुम उसे क्यों नहीं मार देते?' या जब एक माँ अपनी उंगली काटती है, 'देखो तुम्हारी माँ ने अपनी उंगली काट ली है - वह मरने वाली है - क्या तुम आना चाहते हो और मेरे साथ रहते हैं?' बच्चों को शक्तिशाली भावनात्मक प्रतिक्रियाओं में उत्तेजित करने के लिए इन नाटकीय और संभावित खतरनाक इंटरप्ले का अभिनय किया गया था, जैसे कि भावनाओं का उसी तरह से प्रयोग किया जा रहा हो जैसे विकास को प्रोत्साहित करने के लिए बौद्धिक या शारीरिक क्षमताओं को चुनौती दी जाती है (ब्रिग्स, 1998)।

यह जीन जैक्स रूसो (रूसो, 1993) और आगे अरस्तू (हचिंसन, 1995) के समय की एक समझ है कि बच्चों को उनके भावनात्मक अनुभव के संदर्भ में चुनौती दी जानी चाहिए। अरस्तू ने सुझाव दिया कि शिशुओं का जन्म भावनात्मक प्रतिक्रियाओं के एक

बुनियादी सेट के साथ होता है जिसे परिष्कृत किया जा सकता है और स्कूली शिक्षा के संदर्भ में चरित्र, साहस, वफादारी, आत्मविश्वास और उन भावनाओं के गुणों में विकसित किया जा सकता है जो बौद्धिक और सौंदर्यवादी सत्य के प्यार से संबंधित हैं। उन्होंने सलाह दी कि डर को प्रोत्साहित करने और उन्हें साहस की भावनाओं को विकसित करने का अवसर देने के लिए उन्हें जानबूझकर जुझारू खेलों या जोखिम की स्थितियों में चुनौती दी जानी चाहिए। बच्चों को बताया जाना चाहिए कि उन्हें कैसा महसूस करना चाहिए और अपने व्यवहार के माध्यम से उन भावनाओं को अपनाने के लिए दबाव डालना चाहिए। ब्रिग्स द्वारा वर्णित अरस्तू और समकालीन इनुइट दोनों लोगों का मानना था कि बच्चों की भावनात्मक शिक्षा या प्रशिक्षण उस समाज के सांस्कृतिक मूल्यों के अनुरूप होना चाहिए जिसका वे हिस्सा थे। प्रत्येक यह स्वीकार करता है कि किसी भी मानव संस्कृति में एक भावनात्मक आयाम है और उस संस्कृति में दीक्षा में उस संस्कृति के मूल्यों और दृष्टिकोणों को समझने में निहित भावनात्मक अनुभवों में दीक्षा शामिल होगी।

अरस्तू द्वारा अनुशासित 'चुनौतियां' या ब्रिग्स द्वारा वर्णित 'खेल' उनके भावनात्मक प्रभाव के संदर्भ में मजबूत हैं और यह संदेहास्पद है कि वे समकालीन पश्चिमी समाज की भावनात्मक जलवायु के लिए कितने प्रासंगिक हो सकते हैं। कला, साहित्य और खेलों के माध्यम से बच्चों को भावनाओं में संलग्न होने के लिए प्रोत्साहित करने का पारंपरिक रूप से अधिक स्वीकार्य तरीका है। कला और साहित्य के संदर्भ में भावनाओं को प्रतीकात्मक और काल्पनिक प्रतिनिधित्व दिया जाता है और बच्चे गंभीर जोखिम के छोटे खतरे से जुड़ सकते हैं। बेशक, बच्चे साहित्य से बेहद परेशान या भयभीत हो सकते हैं और शिक्षक के लिए यह जानना जरूरी है कि कहानी या नाटक की प्रस्तुति उन्हें कैसे प्रभावित कर रही है और यदि आवश्यक हो तो हस्तक्षेप करें। अधिकांश लोग इस बात से सहमत होंगे कि इस प्रकार के संदर्भ में भावनात्मक अनुभवों के विस्तार से गुजरना बच्चों के लिए अच्छा है (बुबन, 2001)। खेलों में और सामान्य सामाजिक गतिविधियों में, भावनात्मक अनुभव दिन के अनुष्ठानों का एक हिस्सा होते हैं। अपेक्षित भावनात्मक प्रतिक्रियाओं का एक ढांचा है जो खुद को इन गतिविधियों से जोड़ता है और जैसे ही बच्चों को गतिविधि में शुरू किया जाता है, वे उन भावनात्मक भावनाओं को साझा करने के लिए आगे जो इसे उत्पन्न करती हैं।

इस प्रकार भावनात्मक शिक्षा की प्रक्रिया पर दो दृष्टिकोणों की पहचान की जा सकती है। पहला व्यक्ति के दृष्टिकोण से है, जो हमारे भावनात्मक जीवन के संतुलन, हमारी व्यक्तिगत भावनात्मक पहचान के बारे में चिंता का प्रतिनिधित्व करता है और दूसरा, उस समुदाय की भावनात्मक संस्कृति का, जिसके भीतर मैं पला-बढ़ा और शिक्षित हुआ हूँ। हमने संक्षेप में स्कूल की भावनात्मक संस्कृति या माहौल का उल्लेख किया है और यह बताया है कि यह वहां काम करने वाले व्यक्तिगत शिक्षकों या विद्यार्थियों के आराम पर कैसे प्रभाव डाल सकता है। यह तर्क दिया जा सकता है कि शैक्षिक प्राथमिकताओं के सामान्य पुनर्विन्यास के साथ पिछले दशक में स्कूलों की भावनात्मक संस्कृति में काफी बदलाव आया है। शिक्षकों के रूप में हम व्यक्तियों के भावनात्मक प्रोफाइल और साझा सांस्कृतिक संदर्भ दोनों के साथ चिंतित हैं जिसके भीतर भावनात्मक अनुभव साझा किए जाते हैं। जेरोम ब्रूनर दिए गए संदर्भों में भावनात्मक प्रतिक्रिया के 'सही प्रकार' को प्रोत्साहित करने में आनंद और दर्द के एक सौम्य स्तर की भूमिका के लिए तर्क देते हैं। ब्रूनर के लिए बच्चा स्वाभाविक रूप से अपने सामाजिक समूह के भीतर 'संतुलन' चाहता है। यह एक प्रेरक मनोवैज्ञानिक आवश्यकता है और इसे समानता की भावना के संदर्भ में परिभाषित किया गया है जो व्यक्तिगत सुरक्षा, अपनेपन और पहचान की भावना को जन्म देती है। अनुकंपा का विकल्प अलगाव और अलगाव, असुरक्षा और विस्थापन की भावना है। दादा-दादी के घर आने पर बच्चे को प्रोत्साहित किया जाता है, या उन्हें 'प्रसन्न' होने के लिए 'कहा' जाता है ताकि उन्हें ध्यान दिया जा सके और उत्साह दिखाया जा सके।

अधिकांश बच्चे खुशी से इन सामाजिक आवश्यकताओं के साथ गिर जाएंगे क्योंकि वे आम तौर पर स्नेह के भावनात्मक पुरस्कार (ब्रूनर, 1986) के साथ प्रबलित होते हैं। बच्चों को सही तरीके से व्यवहार करने के लिए प्रोत्साहित करके ब्रूनर यह स्वीकार करते हैं कि हम उन्हें 'सही' भावनाओं के अपने अनुभव को प्रबंधित करने में मदद कर सकते हैं। वयस्कों के रूप में इस अनुकंपा की अनुपस्थिति का हम पर एक शक्तिशाली प्रभाव हो सकता है। जिस माँ को अपने नवजात बच्चे के लिए प्यार महसूस करना मुश्किल लगता है, या वयस्क, माता-पिता की मृत्यु पर दुःख महसूस करने के लिए, अलगाव की तीव्र भावनाओं से पीड़ित हो सकती है। रोजर स्कूटन लिखते हैं कि कैसे अचानक संकट की स्थिति में, भावना से रहित, एक भय या चिंता हमारी अनिश्चितता से उत्पन्न होती है कि हमें क्या महसूस करना चाहिए। इस स्थिति में हम स्वयं से, अपने विचारों, उद्देश्यों और इशारों से दूर हो जाते हैं (स्कूटन, 1983)। 'सही' भावनात्मक प्रतिक्रिया को सिखाने, प्रोत्साहित करने या उत्तेजित करने के लिए औपचारिक और अनौपचारिक दोनों तरह के व्यवहारिक अनुष्ठानों का आह्वान किया जाता है। शिक्षक के रूप में हम कक्षा या नर्सरी के भावनात्मक वातावरण के बारे में लगातार जागरूक रहते हैं। बच्चों के प्रवेश करने वाली स्थिति और घटनाओं के भावनात्मक प्रभाव के संदर्भ में अपेक्षाएँ होती हैं और हम सीखने की प्रक्रिया में हर स्तर पर बच्चों के भावनात्मक अनुभवों को एक संसाधन के रूप में आकर्षित करते हैं। हम भावनात्मक क्षमताओं को चुनौती देते हैं और हम जिन

बच्चों को पढ़ाते हैं उनकी भावनात्मक प्रोफाइल विकसित करने की कोशिश करते हैं। इसके अलावा हम विशेष संदर्भों में महसूस करने की उपयुक्तता के बारे में सिखाते हैं, एक संतुलित और अच्छी तरह से अनुकूलित भावनात्मक जीवन को प्रोत्साहित करते हैं, इस प्रक्रिया में बच्चों को मार्गदर्शन करने के साधन के रूप में अनुकंपा और अलगाव दोनों का अनुभव करने का अवसर प्रदान करने की मांग करते हैं।

निष्कर्ष

इस पत्र का एक केंद्रीय उद्देश्य व्यक्तिवादी द्वैतवादी और विषयवादी अवधारणाओं की समकालीन प्रवृत्ति पर गंभीर रूप से विचार करना रहा है जो 'आत्मनिरीक्षण/स्वीकारोक्ति' परिकल्पना में निहित है। इसके खिलाफ सेट 'रचनावादी/वस्तुवादी' दृष्टिकोण है जो भावनाओं को शिक्षक के 'स्टॉक इन ट्रेड' के संदर्भ में देखता है, यानी सार्वजनिक ज्ञान, मूल्य और समझ जो हमारे विशेष सामाजिक और सांस्कृतिक संदर्भ में मौजूद हैं। यह तर्क दिया गया है कि 'आत्मनिरीक्षण/स्वीकारोक्ति' परिकल्पना, व्यावहारिक स्तर पर कठिनाइयाँ पेश कर सकती है। व्यक्तिगत मनोविज्ञान के एक भाग के रूप में भावनाओं की हमारी अवधारणा के संबंध में रहस्यवाद का खतरा है और शिक्षक को कक्षा में प्रोजेक्ट करने की प्रवृत्ति है। चिकित्सक और परामर्शदाता की भूमिका। इस संदर्भ में जोर शिक्षक पर है जो व्यक्ति के मानसिक और भावनात्मक स्वास्थ्य के लिए चिंतित है, न कि सामाजिक रूप से निर्मित संदर्भ में अनुभव के सामाजिक आयामों में बच्चों की आरंभकर्ता के रूप में उनकी भूमिका। विद्यालय की 'भावनात्मक संस्कृति' की प्रकृति के बारे में और अधिक कहने की आवश्यकता है। विशेष घटनाओं के लिए 'सही' या 'सर्वश्रेष्ठ' भावनात्मक प्रतिक्रिया का गठन करने वाली समस्याएं और उस प्रतिक्रिया की ताकत की उपयुक्तता स्कूलों में शैक्षिक बहस के मामले हैं और हालांकि विशेष प्रावधान पर नीति या पाठ्यचर्या बयानों के लिए कॉल करने के लिए अनिच्छुक हो सकता है इस क्षेत्र के लिए इस बात पर विचार किया जाना चाहिए कि पाठ्यचर्या, दोनों औपचारिक और गुप्त, किस प्रकार विद्यालय के भीतर भावनात्मक संस्कृति को प्रतिबिम्बित करते हैं।

संदर्भ सूची-

- बार्न्स, जे. (1995) रेहटोरिक एंड पोएटिक्स, इन: जे. बार्न्स (एड.) द कैम्ब्रिज कम्पेनियन टू अरिस्टोटल (कैम्ब्रिज, कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस).
- बैरैट, आर. (1994) ऑन इमोशन एज ए लैप्स फ्रॉम रैशनलिटी, जर्नल ऑफ मोरल एजुकेशन, 23(2), पीपी. 135-140.
- ब्रिग्स, जे.एल. (1998) इनुइट मोरैलिटी प्ले; द इमोशनल एजुकेशन ऑफ अ थ्री ईयर ओल्ड (लंदन, येल यूनिवर्सिटी प्रेस).
- ब्रूनर, जे. (1979) ऑन नोइंग; एसेस फॉर द लेफ्ट हैंड (कैम्ब्रिज, एमए, हार्वर्ड विश्वविद्यालय प्रेस)।
- ब्रूनर, जे. (1986) एक्चुअल माइंड्स, पॉसिबल वर्ल्ड्स (कैम्ब्रिज, एमए, हार्वर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस)।
- बुबन, एम.एच. (2001) लेवेल्स ऑफ एमोशनस, कला और गतिविधियाँ, 130(2), पीपी. 26-27.
- सर्वाटीस, सी. ए. (2002) एक्सप्लानेट्री इमोशनल टॉक इन मेक्सिकन इमिग्रेंट एंड मेक्सिकन अमेरिकन फैमिलीस, हिस्पैनिक जर्नल ऑफ बिहेवियरल साइंसेज, 24(2), पीपी. 138-163.
- कनिंघम-बर्ली, एट अल (2002) मैपिंग श्योर स्टार्ट स्कॉटलैंड (एडिनबर्ग, स्कॉटिश एक्जीक्यूटिव Q1) शिक्षा विभाग)।
- ईगन, के. (2001) द कोगनीटीव टूल्स ऑफ चिल्ड्रेन्स इमेजिनेशन.
- इवांस, डी. (2001) एमोशन: द साइन्स ऑफ सेंटिमेंट (ऑक्सफोर्ड, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस)।
- एवरसन, एस. (1995) मनोविज्ञान, इन: जे. बार्न्स (एड.) द कैम्ब्रिज कम्पेनियन टू अरिस्टोटल (कैम्ब्रिज, कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस).
- फ्रेजर, जे. (2002) लिसन टू चिल्ड्रेन: फ्रॉम फोकस्ड ऑब्जर्वेशन टू स्ट्रेटेजिक इंस्ट्रक्शन (पोर्ट्समाउथ, न्यू हैम्पशायर, हेनीमैन)।
- गार्डनर, एच. (1993) फ्रेम्स ऑफ माइंड: द थ्योरी ऑफ मल्टीपल इंटेलिजेंस (लंदन, फॉटाना)।
- गोलमैन, डी. (1996) इमोशनल इंटेलिजेंस (लंदन, ब्लूम्सबरी)।
- ग्रेगरी, आर. एल. (1987) द ऑक्सफोर्ड कम्पेनियन टू द माइंड (ऑक्सफोर्ड, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस)।
- हर्चिसन, डी.एस. (1995) एथिक्स, इन: जे. बार्न्स (एड.) द कैम्ब्रिज कम्पेनियन टू अरिस्टोटल (कैम्ब्रिज, कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस)।
- लेडोक्स, जेई (1998) इमोशनल ब्रेन: द मिस्टीरियस अंडरपिनिंग्स ऑफ इमोशनल लाइफ (न्यूयॉर्क, साइमन एंड शूस्टर)।
- मैक्लॉघलिन, सी. (1995) काउंसिलिंग इन स्कूल्स: इट्स प्लेस एंड पर्सन, इन: आर. बेस्ट, पी. लैंग, सी.
- लॉज और सी. वाटकिंस (ईडीएस) पास्टोरल केयर एंड पर्सनल-सोशल एजुकेशन (लंदन, कैसेल)।

- पार्क, जे. (1999) एमोशनल लिटरेसी: एजुकेशन फॉर मीनिंग, इंटरनेशनल जर्नल ऑफ चिल्ड्रेन्स स्पिचुएलिटी, 14(1), पीपी। 19-28।
- पापर, के. आर. एंड एससेल्स, जे. (1977) द सेल्फ एंड इट्स ब्रेन (लंदन, रूटलेज)।
- रैडफोर्ड, एम. ए. (1996) एक्सपीरियंस एंड रिलीजीअस एजुकेशन: डी. हेस (एड.) डिबेटिंग एजुकेशनल इश्यूज (कैंटरबरी, कैंटरबरी क्राइस्ट चर्च कॉलेज)।
- रैडफोर्ड, एम.ए. (1998) चिल्ड्रेन एज स्पिरिचुअल एंड मोरल बीइंग्स, इन: टी. डेविड (एड.) चेंजिंग माइंड्स: लिविंग एंड लर्निंग इन अर्ली चाइल्डहुड (लंदन, पॉल चैपमैन)।
- रैडफोर्ड, एम.ए. (1999) रिलीजीअस एजुकेशन, स्पिरिचुयल्स एक्सपीरियंस एंड ट्यूथा <http://ericece.org/pubs/books/katsym/shuster.pdf>
- स्क्रूटन, आर. (1983) द एस्थेटिक अंडरस्टैंडिंग (लंदन, मेथुएन)।
- शार्प, पी. (2001) नर्चिंग इमोशनल लिटरेसी (लंदन, डेविड फुल्टन)।
- वेब, आर. एंड वुल्लियामी, जी. (2002) द सोशल वर्क डाइमेंशन ऑफ द प्राइमरी टीचर्स रोल, रिसर्च पेपर इन एजुकेशन: पॉलिसी एंड प्रैक्टिस, 17(2), पीपी. 165-184।
- वॉरिंगर, डब्ल्यू. (1992) अब्सट्रक्शन एंड एमपैथी, इन: सी. हैरिसन एंड पी. वुड (एड्स) आर्ट इन थ्योरी 1900-1990 (ऑक्सफोर्ड, ब्लैकवेल)।



प्रवासी साहित्य में राष्ट्रीय चेतना

शिवेंद्र सिंह*

प्रस्तावना

आधुनिक हिंदी साहित्य का एक महत्वपूर्ण और सशक्त पक्ष प्रवासी साहित्य है। बीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में जब भारतीय जनसमूह आजीविका, शिक्षा, व्यापार और तकनीकी कारणों से विदेशों की ओर प्रवास करने लगे, तब उनके साथ उनकी भाषा, संस्कृति, परंपराएँ और राष्ट्रीय स्मृतियाँ भी प्रवासित हुईं। इसी प्रवासजन्य अनुभव से जो साहित्य रचा गया, वही प्रवासी साहित्य कहलाया। यह साहित्य केवल भौगोलिक विस्थापन का साहित्य नहीं है, बल्कि यह स्मृति, पीड़ा, पहचान, सांस्कृतिक संघर्ष और राष्ट्रीय चेतना का साहित्य है। प्रवासी साहित्यकार भौतिक रूप से भले ही अपनी मातृभूमि से दूर हों, किंतु मानसिक, सांस्कृतिक और भावनात्मक रूप से वे भारत से गहरे जुड़े रहते हैं। यही जुड़ाव उनके साहित्य में राष्ट्रीय चेतना के रूप में अभिव्यक्त होता है। राष्ट्रीय चेतना का अर्थ केवल राजनीतिक राष्ट्रवाद नहीं, बल्कि भाषा, संस्कृति, इतिहास, सामाजिक मूल्यों और सांस्कृतिक अस्मिता के प्रति जागरूकता और प्रतिबद्धता है। प्रवासी साहित्य में यह चेतना स्मृति, सांस्कृतिक तुलना, सामाजिक आलोचना तथा भारत-बोध के माध्यम से सामने आती है। प्रवासी साहित्य की अवधारणा, उसके विकास, स्वरूप तथा उसमें अभिव्यक्त राष्ट्रीय चेतना के विविध आयामों का उल्लेख किया गया है। साथ ही यह भी स्पष्ट किया गया है कि प्रवासी साहित्य किस प्रकार वैश्वीकरण के युग में भारतीय राष्ट्रीय चेतना को नए संदर्भ और नई भाषा प्रदान करता है।

बीज शब्द : प्रवासी साहित्य, हिंदी साहित्य, राष्ट्रीय चेतना, भारतीय अस्मिता, सांस्कृतिक स्मृति, प्रवास-बोध, मातृभूमि, भाषा-संरक्षण, वैश्वीकरण, बहुसांस्कृतिक समाज, पहचान का संकट।

प्रवासी साहित्य वह साहित्य है जिसकी रचना ऐसे साहित्यकारों द्वारा की जाती है जो अपनी जन्मभूमि अथवा मातृभूमि से बाहर रहकर साहित्य-सृजन करते हैं। यह साहित्य प्रवासजन्य अनुभवों, विस्थापन की पीड़ा, सांस्कृतिक टकराव, स्मृति-बोध और पहचान की खोज को अभिव्यक्त करता है। हिंदी प्रवासी साहित्य का विकास विशेष रूप से अमेरिका, कनाडा, इंग्लैंड, ऑस्ट्रेलिया, मॉरीशस, फिजी, सूरीनाम आदि देशों में हुआ।

डॉ. विमलेश कांति वर्मा प्रवासी शब्द का अर्थ बताते हैं-

“अपनी भूमि को छोड़कर विदेश गया व्यक्ति पीढ़ी- दर- पीढ़ी प्रवासी ही रहता है।”⁽¹⁾

प्रवासी साहित्य का स्वरूप बहुआयामी है—इसमें कविता, कहानी, उपन्यास, आत्मकथा, संस्मरण और निबंध सभी विधाएँ सम्मिलित हैं। इन रचनाओं में प्रवासी जीवन की समस्याएँ, सामाजिक भेदभाव, नस्लीय अनुभव, सांस्कृतिक अलगाव और साथ ही भारत के प्रति गहरी भावनात्मक निष्ठा स्पष्ट रूप से देखी जा सकती है। राष्ट्रीय चेतना किसी राष्ट्र की सामूहिक आत्मा का बोध है। इसमें इतिहास, संस्कृति, भाषा, परंपरा, सामाजिक मूल्य और राष्ट्रीय स्वाभिमान सम्मिलित होते हैं। साहित्य में राष्ट्रीय चेतना का स्वरूप समय और परिस्थितियों के अनुसार बदलता रहा है। जहाँ स्वतंत्रता आंदोलन के काल में यह चेतना प्रतिरोध और संघर्ष से जुड़ी थी, वहीं उत्तर-ओपनिवेशिक और प्रवासी साहित्य में यह स्मृति, पहचान और सांस्कृतिक संरक्षण से संबंधित हो गई है।

डॉ. बापूराव देसाई के अनुसार “सच्चे अर्थों में देखा जाए तो प्रवासी का अर्थ है- सफर करने वाला। जब कोई व्यक्ति अपना देश, संस्कृति, परिवार, माता-पिता, मित्र तथा सगे- संबंधियों को छोड़कर एक - दूसरे देश में जाकर बस जाता है तो उसे प्रवासी की संज्ञा दी जाती है।”⁽²⁾

प्रवासी साहित्य में राष्ट्रीय चेतना प्रत्यक्ष राजनीतिक नारों के रूप में नहीं, बल्कि सांस्कृतिक प्रतीकों, स्मृतियों, लोकाचार, भाषा-प्रेम और भारत-बोध के माध्यम से व्यक्त होती है। प्रवासी साहित्य का केंद्रीय तत्व मातृभूमि की स्मृति है। प्रवासी लेखक अपने लेखन में भारत को केवल एक भौगोलिक इकाई के रूप में नहीं, बल्कि एक जीवंत सांस्कृतिक सत्ता के रूप में प्रस्तुत करते हैं। गाँव, नदी, त्योहार, रिश्ते, खान-पान, लोकगीत—ये सभी भारत की स्मृतियाँ उनके साहित्य में बार-बार उभरती हैं।

उषा राजेश सक्सेना के अनुसार- “प्रवासी शब्द प्रवास का विशेषण है। प्रवासी एक मनोविज्ञान है, एक अंतर्दृष्टि है, जिसे स्व तरु ‘फारम्युलेट’ होने में बरसों – बरस लगते हैं। एक तरह से प्रवासी वे कलमें हैं जो अपने पेड़ से कटी हुई टहनियाँ

* शोधार्थी, हिंदी विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, मो.नं. 9415405443 ईमेल— shivendrasinghau22@gmail.com

होने के बावजूद बरसों- बरस किसी और मिट्टी- खाद- पानी में अपनी जड़े रोपती हुई अपना बहुत कुछ खोने और नया कुछ उस भूमि में लेने - पाने के साथ अपने अंदर की गहराइयों में नई ऊर्जा सृजित करती हुई चेतन की कोपले विकसित करती हैं।⁽³⁾

यह स्मृति-बोध राष्ट्रीय चेतना को सुदृढ़ करता है। विदेश की भौतिक समृद्धि के बावजूद प्रवासी लेखक भारतीय जीवन की आत्मीयता, सामूहिकता और मानवीय संवेदना को याद करता है। यह तुलना भारतीय संस्कृति के मूल्यों को और अधिक उजागर करती है। भाषा राष्ट्रीय चेतना का सबसे सशक्त माध्यम है। प्रवासी लेखक जब विदेशी परिवेश में हिंदी या अन्य भारतीय भाषाओं में सृजन करता है, तो वह भाषा-संरक्षण के माध्यम से राष्ट्रीय चेतना को जीवित रखता है। विदेशी धरती पर हिंदी में लेखन स्वयं में एक सांस्कृतिक प्रतिरोध है। प्रवासी साहित्यकारों की भाषा में देशज शब्द, लोक-प्रयोग, मुहावरे और सांस्कृतिक संदर्भ बने रहते हैं। इससे स्पष्ट होता है कि भाषा केवल अभिव्यक्ति का साधन नहीं, बल्कि राष्ट्रीय पहचान का आधार है।

कमल किशोर गोयनका प्रवासी साहित्य को हिंदी साहित्य का ही एक हिस्सा मानते हैं- 'हिंदी प्रवासी साहित्य तो हिंदी साहित्य की एक शाखा है और हम यदि इस शाखा को काट देंगे तो हिंदी की जड़े कैसे मजबूत हो सकेंगी!... भारत में रचे जाने वाले हिंदी साहित्य से यह प्रवासी हिंदी साहित्य संवेदना, परिवेश और सरोकार में एकदम भिन्न है, क्योंकि उनकी चिंताएं, समस्याएं तथा संघर्ष भारत के लेखक से भिन्न हैं, इस प्रकार हिंदी प्रवासी साहित्य दो दृष्टि से महत्वपूर्ण है- एक तो वह अपनी मौलिकता और विशिष्टता रखता है और हिंदी साहित्य में कुछ नया जोड़ता है, दूसरे वह हिंदी साहित्य को वैश्विक बनाने में महत्वपूर्ण योगदान करता है।'⁽⁴⁾

प्रवासी जीवन में सबसे बड़ा संघर्ष सांस्कृतिक होता है। एक ओर मेजबान देश की संस्कृति, मूल्य और जीवन-शैली होती है, तो दूसरी ओर भारतीय संस्कार और परंपराएँ। इस द्वंद्व से जो साहित्य जन्म लेता है, उसमें राष्ट्रीय चेतना का नया रूप दिखाई देता है।

प्रवासी साहित्यकार भारतीय संस्कृति की श्रेष्ठताओं को बनाए रखने का प्रयास करता है—संयुक्त परिवार की भावना, माता-पिता के प्रति सम्मान, धार्मिक आस्था, नैतिक मूल्य आदि। यह सांस्कृतिक संरक्षण राष्ट्रीय चेतना का ही एक रूप है।

सुधा ओम ढींगरा प्रवासी साहित्य की पीड़ा व्यक्त करने का साहित्य मानती हैं - "प्रवास शब्द अपने मूल में विस्थापन की पीड़ा का बोध कराता है। प्रवासी व्यक्ति के मन में सदैव अपनी जड़ों से कट कर दूर रहने की पीड़ा का कचोटती है और यही पीड़ा प्रवासी साहित्य का बीजा रोपण करती है।..... प्रवासी साहित्य से आशय देश से बाहर रह रहे प्रवासियों द्वारा रचे गए साहित्य से हैं।"⁽⁵⁾

प्रवासी साहित्य में पहचान का संकट एक प्रमुख विषय है। प्रवासी व्यक्ति न पूरी तरह विदेशी हो पाता है और न पूरी तरह देशी। इस द्वैत की स्थिति में उसकी राष्ट्रीय पहचान और अधिक प्रखर हो जाती है। वह स्वयं को भारतीय कहकर अपनी सांस्कृतिक जड़ों से जुड़ा रहता है। यह पहचान-बोध प्रवासी साहित्य को गहराई प्रदान करता है और राष्ट्रीय चेतना को आत्मचिंतन के स्तर पर प्रस्तुत करता है।

"लेखक प्रवासी हो सकता है मगर साहित्य प्रवासी नहीं हो सकता। जिस तरह हम मुंबई, कोलकाता या दिल्ली के हिंदी साहित्य को प्रवासी नहीं कहते जबकि वहां के अधिकतर हिंदी लेखक पहली पीढ़ी के प्रवासी होते हैं; ठीक उसी तरह हमें ब्रिटेन या अमेरिका के हिंदी लेखन को भी प्रवासी साहित्य कहने की कोई आवश्यकता नहीं है।"⁽⁶⁾

कुछ प्रवासी रचनाओं में भारत की सामाजिक और राजनीतिक स्थितियों पर भी चिंतन मिलता है। भ्रष्टाचार, गरीबी, सामाजिक विषमता, स्त्री की स्थिति जैसे विषयों पर प्रवासी लेखक संवेदनशील दृष्टि से लिखता है। यहाँ राष्ट्रीय चेतना आलोचनात्मक रूप में सामने आती है—यह देश-प्रेम के साथ सुधार की आकांक्षा को भी व्यक्त करती है।

"सर्वप्रथम तो विदेशों में रचे जा रहे साहित्य को जो प्रवासी हिंदी साहित्य नाम दिया गया है, मैं उससे सहमत नहीं हूँ।... साहित्य को उसकी संपूर्ण समग्रता से देखा जाना चाहिए।"⁽⁷⁾

वैश्वीकरण के युग में प्रवासी साहित्य राष्ट्रीय चेतना को वैश्विक संदर्भ प्रदान करता है। यह साहित्य बताता है कि राष्ट्रीय पहचान स्थिर नहीं, बल्कि गतिशील है। प्रवासी लेखक भारतीयता को वैश्विक मंच पर प्रस्तुत करता है और उसे बहुसांस्कृतिक संवाद का हिस्सा बनाता है।

कमल किशोर गोयनका अपना मंतव्य प्रस्तुत करते हुए लिखते हैं कि "कुछ लोगों ने यह आपत्ति उठाई है कि साहित्य प्रवासी नहीं होता और प्रवासी कहकर आरक्षण मांगना अनुचित है। मैं कई ऐसे प्रवासी साहित्यकारों को जानता हूँ, जो प्रवासी संकलनों में छपना चाहते हैं, पर प्रवासी साहित्यकार कहलाना पसंद नहीं करते इसके लिए बड़े-बड़े वक्तव्य देते हैं, पर यह दोहरी नीति क्यों? यह ठीक है साहित्य प्रवासी नहीं होता, किंतु उसका लेखक प्रवासी है और प्रवासी लेखक के रचे साहित्य को प्रवासी कहना क्यों अनुचित होना चाहिए? असल में विदेशों में भारतवर्षियों द्वारा रचे साहित्य के लिए प्रवासी साहित्य इतना

प्रचलित तथा लोकप्रिय हो गया है कि अब उसका प्रयोग बंद करना कठिन है। वैसे ही प्रवासी शब्द से इस साहित्य को हाशिए पर डालने तथा आरक्षण की सुविधा देने के लिए नहीं है। यह तो इस साहित्य की पहचान और विशेषता के लिए है। 'प्रवासी' लेखकों के अपमान के लिए नहीं उनके सम्मान के लिए है। उसकी अलग पहचान के लिए है और उनके स्वतंत्र मूल्यांकन की परंपरा को आरंभ करने के लिए है।¹⁴⁽⁸⁾

इस प्रकार प्रवासी साहित्य संकीर्ण राष्ट्रवाद से ऊपर उठकर सांस्कृतिक राष्ट्रवाद की अवधारणा को पृष्ठ करता है।

निष्कर्ष

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि प्रवासी साहित्य में राष्ट्रीय चेतना एक गहन, संवेदनशील और बहुआयामी रूप में अभिव्यक्त होती है। यह चेतना न तो केवल अतीत-गौरव का गुणगान है और न ही मात्र भावुक देश-प्रेम, बल्कि यह स्मृति, पहचान, भाषा, संस्कृति और आत्मबोध का समन्वित स्वरूप है। प्रवासी साहित्यकार विदेशी धरती पर रहते हुए भी भारत को अपने साहित्य में जीवित रखता है। उसकी रचनाएँ यह सिद्ध करती हैं कि राष्ट्रीय चेतना भौगोलिक सीमाओं की मोहताज नहीं होती। भाषा, संस्कृति और स्मृति के माध्यम से यह चेतना पीढ़ी-दर-पीढ़ी प्रवाहित होती रहती है।

इस प्रकार प्रवासी साहित्य न केवल हिंदी साहित्य को समृद्ध करता है, बल्कि भारतीय राष्ट्रीय चेतना को वैश्विक आयाम भी प्रदान करता है। यह साहित्य आधुनिक युग में राष्ट्र, संस्कृति और पहचान के नए अर्थों को उद्घाटित भी करता है।

संदर्भ सूची -

1. भावना सक्सेना (संपादक), सूरीनाम का सृजनात्मक हिंदी साहित्य, प्राक्कथन- विमलेश कांति वर्मा, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली - 2015, पृष्ठ संख्या- 14
2. डॉ. बाबूराव देसाई, प्रवासी साहित्य का इतिहास- सिद्धांत एवं विवेचन, पराग प्रकाशन, कानपुर - 2020, पृष्ठ संख्या- 78
3. वर्तमान साहित्य पत्रिका, कुंवर पाल सिंह, नमिता सिंह (संपादक), प्रवासी हिंदी लेखन तथा भारतीय हिंदी लेखन (आलेख) प्रवासी हिंदी लेखन- अमेरिका के संदर्भ में, उषा राजे सक्सेना, रुद्र आदित्य प्रकाशन, इलाहाबाद, जनवरी- फरवरी - 2006, पृष्ठ संख्या - 62
4. कमल किशोर गोयनका, हिंदी का प्रवासी साहित्य, स्वराज प्रकाशन, दिल्ली- 2017, पृष्ठ संख्या - 15/ 16
5. डॉ. एम. फिरोज खान - प्रवासी महिला कथाकार, सारंग प्रकाशन, वाराणसी- 2018 (भूमिका से उद्धृत), पृष्ठ संख्या- 7
6. सृजन संदर्भ पत्रिका, सतीश दुबे व संजीव (संपादक), तेजेंद्र शर्मा- मुंबई मेरी कर्मस्थली...(अं. सं.), अक्टूबर - दिसंबर- 2011, पृष्ठ संख्या- 5
7. सुधा ओम ढींगरा, वैश्विक रचनाकार- कुछ मूलभूत जिज्ञासाएं, शिवना प्रकाशन, सीहोर, मध्य प्रदेश - 2013, पृष्ठ संख्या - 169 /170
8. सुधा ओम ढींगरा, वैश्विक रचनाकार- कुछ मूलभूत जिज्ञासाएं (भाग - 2), शिवना प्रकाशन, सीहोर, मध्य प्रदेश- 2017, पृष्ठ संख्या- 213/ 214

